सांईं की मौज

सफरे जिन्दगी अभी खत्म नहीं होता।
इस लिये मौज से काम हूं करता।

लेखक

परम संत परम दयाल
पं फकीर चन्द जी महाराज
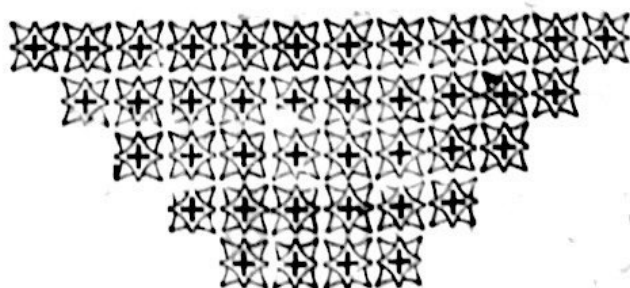
दो शब्द

हज़ूर परम दयाल पं फकीर चन्द जी महाराज की यह रचना जिसे आप मानव मन्दिर के रूप में पढ़ने जा रहे हैं इसका नाम "सांई की मौज" है यह पुस्तक उन्होंने सन १९६३ ईसवी में लिखी थी और मनुष्य बनो पत्रिका में छपी थी। बहुत सज्जन इसकी मांग करते थे मगर यह उपलब्ध न थी। हम श्री गोपाल दास जी के आभारी हैं जिन्होंने तलाश करके हमें एक कापी दी और हम इसे मानव मन्दिर में छाप रहे हैं।

इस पुस्तक के नाम से ही इस अपूर्व रचना का महत्व जाना जा सकता है। सांई कहते हैं स्वामो या मालिक को और मौज कहते हैं हिलोर, लहरों व तरंगों को अथवा प्रकृति का वह नियम जिस के द्वारा उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का क्रम चल रहा है। इस पुस्तक को बार २ पढ़ कर मौज के आशय का ज्ञान प्राप्त करके जीवन सुखमय बनाना है, कबीर साहिब ने फरमाया है कि:—

साहिब के दरबार में कमी काहू को नाहिं ।
बन्दा मौज न पावही चूक चाकरी माहिं ॥

सेवक को सेवा द्वारा सांईं की इच्छा को जानना है, रचना के भेद को प्राप्त करना है । यदि ऐसा नहीं करता तो चाकरी में चूक करना है ।

इस पुस्तक के सात चरण हैं, हर एक पर परम दयाल जी महाराज की मौज लिखा हुआ है अर्थात यह प्रवचन मौज से उनके श्री मुख से निकले हैं जो कि हम संसारी जीवों को मौज में रहने की प्रेरणा दे रहे हैं ।

मौज के विषय में हज़ूर दाता दयाल महर्षि शिव व्रत लाल जी महाराज के निम्नलिखित शब्द पढ़िये जो मौज का आशय प्रकट करते हैं ।

—: मौज :—

मौज की आई परख, अब चित में दुचिताई कहां ।
मौज के होते हुए, दुचिताई फिर आई कहां ॥
करने वाला काम करता है, हमारा नाम है ।
करता धरता आप वह, कुछ मुझसे बन आई कहां ॥
अगमा पाई जगत है, दो दिन के मेले का है ढंग ।
बिछड़ेंगे सब एक दिन, मां बाप और भाई कहां ॥
और का है हाथ, और तलवार करती काट है ।
काट हर तलवार कब, अपनी कभी लाई कहां ॥

मित्र से क्या नेह. और क्या शत्रुओं से द्वेष हो ।
मित्रता और शत्रुता, किस पुरुष को भाई कहां ॥
सब ही उसके, वह है सबका. सबको उससे काम है ।
तूने निष्फल और मिथ्या, ममता को पाई कहां ॥
राधास्वामी सन्त गुरु ने, कटाया फन्द को ।
सब का दाता आप वह है, दाई और माई कहां ॥

———

मौज की रचना न्यारी है ॥ टेक ॥
किसी को मौज बनावे राजा, किसी को रंक भिखारी है।
किसी को दे सुख चैन विलासा, करे किसी को दुखारी है ॥
जो कुछ है सो मौज की लीला, मौज की गति मति भारी है।
मौज मौज की, मौज मौज की, लीला अगम अपारी है ॥
मौज निरख हमको मिली शान्ति, राधास्वामी की बलिहारी है॥

———

मौज से जो होने वाला है. वह होगा आप से।
लाभ कुछ होता नहीं चिंता के तोल और नाप से ॥
हम न आये इस जगत में, आप जाते भी नही।
मौज जब लाई वह ले जायगी, आ कर आप से ।
नाम जो जपते हैं उनका, काम होता है सदा।
किसको मिलता है यहां कुछ माल धन के जाप से ॥
अपनी करनी आप भरनी. और का क्या आसरा।
काम कब किस का बना, भाई से और मां बाप से ॥
राधास्वामी नाम का, सुमिरन हो उठते बैठते ।
नाम छुटकारा दिलायेगा, भरम से पाप से ॥

सैक्रेट्री मानवता मन्दिर

परम दयाल जी की मौज

प्रथम चरण

प्रत्येक वस्तु किसी शक्ति के अंतर्गत बनती है और कार्य करती है। मुझे उस शक्ति के देखने और मिलने के लिये प्रकृति ने बनाया। समस्त आयु उसकी खोज में व्यतीत हुई। संतमत में मौज ले आई और हज़ूर दाता दयाल महर्षि जी के पवित्र चरणों की शरण मिली। आपने मुझे अपने घट के अन्तर चढ़ने और उस शक्ति के देखने अथवा मिलने का मार्ग बताया।

सहस दल कमल, त्रिकुटी, सुन्न महासुन्न और भंवर गुफा की सोपानों को पार करता हुआ अपने संकल्प और वासनाओं को छोड़ कर प्रकाश और शब्द के मंडल को पार करती हुई सुरत आगे गई। अनेक बार अशब्द और अप्रकाश रूप होकर फिर लौटती रही। क्यों ? मैं यह नहीं जान सका केवल यह कहूं कि मौज।

वर्तमान समय में वैज्ञानिक आकाश मंडल में स्पूटनिक भेज कर और मानव द्वारा वहां के वृतांतों को लेखनी बद्ध करते जा रहे हैं जिससे कि उनको अथवा अन्य को भविष्य में कुछ लाभ हो। सतयुग के पश्चात भारतवर्ष की यह प्रणाली रही है, अच्छी कहो अथवा बुरी कि जो कुछ किसी को किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त हुआ उसको उसने गुप्त रक्खा। ज्ञात नहीं कि पूर्वजों का ऐसा भाव क्यों रहा और संतो की भी यही दशा रही। सत्त कबीर जैसे महा पुरुष ने भी धर्मदास को कहा:—

धर्मदास तोहि लाख दुहाई।
सार भेद बाहर नहिं जाई।।

अध्यात्म का रहस्य ही केवल नहीं वरन् प्रत्येक प्रकार का ज्ञान जो किसी को ज्ञात हुआ गुप्त रखने का प्रयत्न किया गया। मेरे विचार में यह इसलिये हुआ कि अधिकारी नहीं थे। अनाधिकारी को यदि कोई वस्तु प्राप्त हो जाये तो वह उसका मान नहीं करता वरन् अनुचित लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करना है। सम्भव है कि यह रहस्य हो। मैं किसी के मानसिक भावों को किस प्रकार जान सकता हूं। कुछ कहा नहीं जाता।

मुझे जगत् कल्याण का कार्य मौज ने दिया इसलिये मैंने किसी रहस्य को गुप्त नहीं रक्खा। इसमें संदेह नहीं कि मुझको मान, प्रतिष्ठा, धन-सम्पत्ति आदि नहीं मिली और मैंने इनका किंचितमात्र विचार भी नहीं किया। इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्रों में मेरे साहित्य के पढ़ने का विरोध किया हुआ है जिससे मुझे प्रसन्नता है कि अनाधिकारी तो अध्ययन न करेंगे। यदि किसी समय कोई विचार उत्पन्न होता है तो केवल यह कि मेरे साहित्य के साथ ही दाता दयाल जी के साहित्य का भी बाईकाट किया गया। यह मेरे नाम में सांसारिक दृष्टिकोण से कलंक का टीका है। किन्तु चूंकि मेरा विचार ऐसा नहीं था कि दाता दयाल जी के साहित्य का भी बाईकाट हो और न मैं व्यक्तिगत किसी का विरोधी अथवा सहायक हूं। मैंने अपना जीवन व्यतीत कर दिया और विवश होकर संसार की भलाई के विचार से कार्य किया है। मेरा निज स्वार्थ कोई नहीं है।

अज़ल से जानिबे हस्ती, तलाशे यार में आये।
हवाये गुल से हम, इस वादिये पुरखार में आये॥

अब उस अन्तिम सोपान से लौट कर आने पर

मेरी क्या दशा है ? सुमिरन, ध्यान और भजन का वह आदर मान अब नहीं रहा जो जीवन के आरम्भ में था। ऐसा क्यों हुआ ? सतसंगी जिन्होने मुझे गुरु माना उनके अनुभव और अपने निज जीवन की खोज ने मुझे निश्चय करा दिया।

इस सहसदल कमल में, मेरा मन ही अनेक बन कर खेलता था।
अपने ही मन से सब दृश्य बनाकर, इनमें ही वह पेलता था ।।
खुद में मस्त रहना, और मस्ती की रहती झड़ी लगी सदा।
घट में रह कर सुनता रहता, आलमे गैब को निदा ।। (आवाज)
दिल में आया चला था, तलाशे राम में तू।
राम क्या निकला जरा बता दे, तू तो खुद में ही भरमा गया ॥
दिल में आया ख्याल चढ़ा ऊंचे, तो फकत शब्दो प्रकाश था।
राम की तलाश में, खुद ही उसमें गुम होने लगा ॥
भूलने लगा अपने आपके, सारे आखिर सभी अहसास।
गुम होने लगा लामकानी में, क्या लामकानियत ही है मेरा खुदा ।।
गर मैं ही होता तो कर जाता, जो कुछ चाहता न हरगिज रुकता।
अब साबित हुआ कि मैं हू फकत, ज़ात का एक बुलबुला ।।
मैं ही नहीं सब कोई है यहां फकत बुलबुलाये चेतन।
भरम अपने में आकर वह, कुछ का कुछ बनता रहा।

मित्रो देखो ! यदि मानव ही सब कुछ है तो वह अपने शारीरिक व अन्य कष्टों को दूर और अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण क्यों नहीं कर लेता। वह

शक्ति जो इस रचना को चला रही है यद्यपि वह हम से पृथक नहीं है।

मेरे कान में आज पन्द्रह दिवस से पीड़ा और खुजली है। डाक्टर अनेक औषधियां प्रयोग कर रहा है परन्तु कोई लाभ नहीं है। प्रत्यक्ष में कोई विशेष कष्ट भी नहीं है। केवल खुजली और पीड़ा है। किन्तु यदि मैं इतना ऊंचा चढ़ जाने के पश्चात कुछ कर सकता तो अपनी चिकित्सा कर लेता। बड़े बड़े परम सन्त कहलाने वाले अपने कष्ट और रोग दूर न कर सके। मैं चकित होता हूं जब अन्य प्राणी कहते हैं कि वह मेरे प्रसाद से अरोग्य हो गये किन्तु मैं अपना कष्ट निवारण न कर सका।

इस साधन से जो मैंने किया केवल यह हुआ कि मेरी वह खोज जो उस मालिक मे मिलने की थी वह समाप्त हो गई। यदि मैं इस रहस्य को गुप्त रखता तो महन्त बन जाता और अज्ञानी जीवों को लूट लूट कर खाता और अपना नया धर्म और क्षेत्र बना जाता।

संतमत शान्ति, सौख्य, श्रद्धा और विश्वास

का मार्ग है। यही मेरी समझ में आया है। संतमत जीवन व्यतीत करने का यथार्थ उपाय वर्णन करता है। यदि कोई किसी रहस्य ज्ञाता से रहस्य प्राप्त करले तो वह जीवन पर्यन्त प्रत्येक प्रकार से सुखी और प्रसन्न रहकर सच्चा विश्वासी उस मालिक की जात का हो सकता है। किन्तु इस गोपनीय दशा ने अनेक पन्थ और धर्म उत्पन्न किये हुए हैं।

मेरी समझ में यह आया है कि यह समस्त रचना एक महान शक्ति जिसका आद, अलख, अगम और अकाल गति है और उसकी गति से यह समस्त खेल हो रहा हैं। इस खेल के रहस्य को समझ लेने से इस रहस्य के सहारे मानव अपनी जीवन यात्रा को प्रसन्नता पूर्वक और अचिन्तपने से व्यतीत कर सकता है।

जाके मन नहीं चिन्ता व्यापे. वही है जग में दास फकीर
अभय रहे चित गुरुपद राखे, धीर वीर गम्भीर ॥

गुरु पद क्या है? गुरु नाम है ज्ञान का, समझ का, विवेक का, अनुभव का और वास्तव में अकाल पुरुष का, दयाल का नाम ही राधास्वामी है। उसकी प्राप्ति पूर्ण पुरुषों जो स्वयं विदेह गति अथवा जीवन मुक्त अवस्था में रहते हैं का सतसंग है। उनका ध्यान

उनके दर्शन से रेडिएशन मिलती रहती है और मानव की बुद्धि स्वच्छ और निश्चयात्मिक होती रहती है। जन साधारण के लिये सबसे अच्छी विधि यही है कि सत्संग करें, वह भी उनका जो स्वयं सुलझे हुये हैं। बात समझकर अपनी सुरत को उस मालिक जात के प्रेम में लगाते हुये अपने जीवन की यात्रा पूरी कर जाओ। कर्म का नियम अटल है। ऋषि, मुनि, पीर पैगम्बर, अवतार, सन्त, परम सन्त, साधू, महात्मा समस्त इसके आश्रय हैं। सच्चे बनो। धोखा, स्वार्थ, छल, कपट त्यागो। अनुचित लाभ के लिये चार सौ बीस मत करो। विषय विकार- इन्द्रियों के स्वाद में फंसकर हम दुखी होते रहते हैं। सदाचारी, शिष्टाचारी होते हुये मनुष्म बनो। अपने रूप को जानो। हम सब उस अलख, अगम, अकाल पुरुष, परमगति की अवस्था अथवा अनामी पद के अंश है। क्षोभ के क्रम में यहां आये और फंस गये।

अब उलट चलो: अब उलट चलो, असमान नीचे क्यों रहना।
नीचे मन है, तन है और इद्रियां, इनमें दुख सुख क्यों सहना॥
यह जीवन नित नहीं है, जो भी आया उसे आखिर को है चलना।
चार दिनों की खातिर प्यारे, आफत सर पर हां क्यों लेना॥

मुड़ कर आया हूं उस देश से. देता हूं सन्देश यही ।
क्यों आया हूं ? मौज ही जाने, मौज का ही है सब करना ॥
दास फकीर अलमस्त अंग में. प्रगटा जग में आई ।
मौज ही थी कह जाऊंगा, जो होगा निज अनुभव अपना ॥

नोट:—अब भविष्य में मेरे लेख मौज के शीर्षक से निकलेंगे । अगले चरण में अन्तर की दशा वैज्ञानिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि के ग्रहण योग वर्णन करूंगा । उसको जो किंचित-मात्र भी बुद्धि रखता है समझ सकेगा । मौज । साथ ही सन्तों की वाणी की पुष्टि होगी । प्रार्थना करो कि मैं अपने निज रूप में लय हो जाऊं ।

परम दयाल जी की मौज

द्वितीय चरण

आज दूसरा चरण भेजता हूं। दाता दयाल, परम तत्व, ज्ञात अनामी के अवतार महर्षि जी की रचना दयाल पत्रिका के क्रम में "संतमत का महत्व" जो राधास्वामी सतसंग सभा हनमकुंडा की ओर से प्रकाशित हुई है. मिली, अनेक बार पढ़ी। समय की बात है। कभी मैं दाता दयाल की वाणी को श्रद्धा और प्रेम भाव के अन्तर्गत पढ़ा करता था। किंतु अब श्रद्धा और प्रेम तो है, पर उनकी वाणी में जो मुझे जीवन में निजी अनुभव हुआ है, उसकी खोज करता रहता हूं। केवल उनकी वाणी में ही नहीं वरन् प्रत्येक महापुरुष की वाणी के साथ यही दशा है। दाता दयाल महर्षि जी की पवित्र पुनोति विभूति ने वर्णन कया था कि फकीर.—

"जब लग तेखो न अपने नैना।
तब लग माना न गुरु के वैना॥

मुझे स्वतन्त्रता और सत्यता की शिक्षा का संस्कार है। इसलिये मौज ने पक्षपाती और टेकी नहीं

रहने दिया है। पुस्तकों और व्याख्यानों में सदैव किसी न किसी प्रकार का बाहर के प्रभाव अथवा निज स्वार्थ विद्यमान रहता है और वह भाव प्रत्येक पुस्तक और व्याख्यान के बीच में मन्तव्य बन कर काम करता रहता है। बहुत कम व्यक्ति हैं जो किसी के वास्तविक मन्तव्य को पूर्णतया समझ सकते हैं। किन्तु जो कुछ भी प्राणी किसी की वाणी को समझता है मेरे विचार में वह अपने ही भाव और विचार के अनुसार समझता है । मैं एक सत्यता प्रिय पुरुष के नाते कार्य करता हूं । मुझ पर सबसे अधिक निज अनुभव जो मैंने प्राप्त किया है उसका संस्कार रहता है और साथ ही वर्तमान देशीय, सामाजिक, गरेलू जीवन जिसमें इस समय हम सब रह रहे हैं उनके प्रभाव रहते हैं। चूंकि मेरा उद्देश्य जगत कल्याण का है, इसलिये मेरी प्रत्येक वाणी में यह भाव विचार, आते रहते हैं और मैं इसी संस्कार के अंतर्गत लिख रहा हूं।

फकीर अथवा संत यह किसी एक सम्प्रदाय के लिये कार्य नहीं करते हैं। इनका भाव सबके लिये समान होता है।

इस संतमत के महत्व में प्रत्येक रूप से आनन्द योग (प्रसन्नता) के ऊपर वाद विवाद किया गया है। लाखों सतसंगी हैं जो सुरत शब्द योग के साधक हैं। केवल राधास्वामी मत के ही नहीं बल्कि और बहुत सी शाखायें हैं जो सुरत शब्द योग के किसी न किसी रूप में साधक हैं। चूंकि मेरे पास प्रत्येक विचार के व्यक्ति आते रहते हैं बल्कि राधास्वामी मत के कट्टर अनुयायी तो बहुत कम आते हैं। अधिकांश अन्य विचार विमर्श करते रहते हैं। इसलिये मैं समझता हूं कि यह सबके क्रियात्मिक रूप से प्रसन्न और सन्तुष्ट नहीं है। अनेक अधोगति के कारण मस्त अवश्य देखे किन्तु समय आया जब उनकी मस्ती उतर गई। मेरा अपना जीवन मेरे सम्मुख है। इसलिये विचार हुआ कि इस आनन्द योग, सुरत शब्द योग अथवा अध्यात्म कह लो अथवा और कोई नाम रख लो, के सम्बन्ध में अपना निज अनुभव मौज अधीन कह जाऊं।

मेरा अनुभव यह सिद्ध करता है कि इस मार्ग में पूर्ण लाभ उस समय तक न होगा जब तक पूर्ण रूपेण प्राणी को यह ज्ञान न होगा कि शरीर, मन और आत्मा क्या हैं, कैसे बनते हैं, कैसे इनका खेल

होता है। इसके पश्चात फिर इस समझ के सहारे प्राणी इनके दुख सुख के प्रभावों से पृथक रहकर अपने निज स्वरूप, जो कि शरीर, मन और आत्मा के परे हैं उसमें ठहराव ले सकेगा। इसलिये इस सुरत शब्द योग के साधन के साथ यह अनिवार्य है कि किसी पूर्ण पुरुष का सतसंग जो स्वयं इन समस्त सोपानों का पूर्ण ज्ञाता हो, क्रियात्मिक रूप से करो, विद्यात्मिक रूप से और बात है।

जीवन का अनुभव सिद्ध करता है कि हमारे शारीरिक और मानसिक दुख सुख लाख प्रयत्न करने पर प्रभावित होने से नहीं रुक सकते।इन की रूकावट केवल इतनी ही है कि इनका ज्ञान हो जाये। किन्तु यदि यह समझ बूझ बुद्धि द्वारा आ भी गई तो इनके प्रभावों के समय यदि मानवीय सुरत को किसी विशेष केन्द्र पर ठहरने की आदत नहीं है अथवा इस केन्द्र का ज्ञान नहीं तो भी जीवन वास्तविक और सच्ची प्रसन्नता को प्राप्त नहीं कर सकता। इन निजी अनुभवों के आधार पर मैंने साहस करके अपना अनुभव मानव जाति के सच्चे कल्याण के विचार से वर्णन किया है और मेरा यह अनुभव ५७ वर्ष के निज साधन के आधार पर है। मेरा

कोई दावा नहीं है। अपना अनुभव वर्णन करना कोई अपराध नहीं है।

दादू दावा मत करे. निर दावा दिन काट।
कितने हू सौदा कर गये, या पंसारी की हाट॥

इस सन्तमत में पहली शर्त इस मार्ग पर चलने वालों के लिये धन, स्त्री और सम्पत्ति को भाग्य पर छोड़ना है। तब इस मार्ग पर चलना है। पोथी सार वचन के शब्द इस सम्बन्ध में विल्कुल स्पष्ट हैं। हिन्दू शास्त्रों में वैराग्य को मुख्य माना है। संसार के कष्टों से ठुकराया हुआ व्यक्ति संभव है कुछ समय के लिये इस ओर आकर्षित हो जाये, किन्तु समय आयेगा कि वह खाली होकर इस लाईन को छोड़ जायेगा और अपने वैराग्य को छोड़कर राग का कोई अन्य रूप ग्रहण कर लेगा। परिणाम यह होगा कि वह पूर्ण अवस्था को नहीं पहुंच सकेगा।

चलो चलो सब कोई कहे, विरला पहुंचे कोय।
एक कनक और कामिनी, दुर्गम घाटी दोय॥
कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बढ़ाई ईर्ष्या, तजनी दुर्लभ एह॥

इस लिये ठोकर लग कर जो वैराग्य उत्पन्न होता है, उसका परिणाम यदि कोई पूर्ण पुरुष न मिला

हुआ हो तो लाभदायक न होगा। संभव है कि उसके मन में या तो कभी कभी उन घटनाओं जिनसे उसको ठोकर लगी थी का स्मरण होता रहे अथवा वह उन घटनाओं से घृणा करता रहे।

जिस रूप में सन्तमत का यह सुरत शब्द योग अथवा नाम दान आदि सब के लिये लाभदायक जन साधारण बताते हैं मेरे विचार में क्रियात्मिक रूप से यह बिना किसी पूर्ण पुरुष की संगत के पूर्ण लाभ न दे सकेगा। यह शब्द मैं निज अनुभव के आधार पर और बहुत से व्यक्तियों के जीवनों को अध्ययन करने के पश्चात, जो इस मार्ग पर चल रहे हैं, कह रहा हूं। इस कमी को बाहरी रूप में दूर करने के लिये और जीवों को इस क्षेत्र अथवा पन्थ में लगाये रखने के विचार से रोचक और भयानक वाणी कह कर इन महापुरुषों ने दिलासा दिया है, किन्तु जो दिलासा दिया गया है वह त्रुटिपूर्ण सिद्ध हुआ। उदाहरणत: कि भाई, मरते समय गुरु आकर ले जायेगा और तुमको सत् पद पहुंचा देगा। मेरे निज अनुभव में यह विचार आनन्ददायक अवश्य है किन्तु है यह नितान्त असत्य। जब तक कोई अन्य तुमको ले जायेगा तुम अद्वैत में

कैसे जा सकते हो। वह ले जाने वाला तुम्हारा अपना ही मन होगा। कई सज्जन मरे और वह कहते गये कि दयाल फकीर आये और ले जा रहे हैं। दयाल फकीर न उनको जानता है और इस घटना से नितान्त अनभिज्ञ है। इसलिये:—

जाको दर्शन इत्त है, ताको दर्शन उत्त।
जाको दर्शन इत नहीं, ताको इत न उत्त॥

ऐसे व्यक्तियों को सम्भव है सतपद मिल जाता हो। आवागमन से बच जाते हों, मैं नहीं जानता हूं। किन्तु अपनी स्थिति स्पष्ट रखने के लिये कहता हूं कि मैं न कहीं जाता हूं और न किसी को ले जाता हूं। अन्य महात्माओं को अपने अन्तर झांक कर सोचना चाहिये कि यदि वह स्वयं नहीं जाते तो वह ऐसी शिक्षा देकर अपने पन्थ अथवा गद्दी को स्थापित रखने के लिये जो प्रोपेगैंडा करते हैं यह एक महान अपराध और अन्याय है। अपने भविष्य को भी दूषित और दुखमय कर रहे हैं। यही कारण है कि राधास्वामी मत में बार बार कहा गया है कि "जीवित पूर्ण गुरु की खोज करो"

"गुरु खोजो री, जग में, दुर्लभ रतन यही।"

इस कमी को देखकर मौज ने मेरे मस्तिष्क को

हिलाया है और मैं गुरु की आज्ञा के अधीन इस संसार में सत्यता और स्पष्टता से बात करने के लिये प्रकट हुआ हूं।

अब आओ ! सुनो। आप सज्जनों को बताना चाहता हूं कि धन, स्त्री और सम्पत्ति को भाग्य पर छोड़ने के लिये वैराग्य की अत्यन्त आवश्यकता है। किन्तु यह वैराग्य जब तक प्राणी इन सोपानों को पार न कर लेगा जिनका उल्लेख सन्तों ने किया है और सतसंग न करेगा (वह भी किसी पूर्ण पुरुष का) और जब तक यह नहीं होगा, मानवीय सुरत अपने केन्द्र तथा निज रूप में नहीं ठहर सकती है। और जब तक ऐसी अवस्था नहीं आती इस काल और माया के चक्र से पूर्ण रूप से छुटकारा भी असम्भव है।

इससे पूर्व कि मैं काल और माया से निकलने का साधन निज अनुभव के आधार पर कहूं, अपनी आत्मा से प्रश्न करता हूं कि क्या कोई ऐसा स्थान है, जहां काल और माया नहीं है। आयु बीत गई इसी धुन में। जो अनुभव किया वह कहता हूं।

जिस प्रकार भी खेल और दृश्य मानवीय सुरत

देखती है। चाहे बाहरी नेत्रों से चाहे आन्तिरिक नेत्रों से वह सब काल है। क्योंकि वे सब दृश्य बाहरी और भीतरी परिवर्तनशील होते हैं। और इस परिवर्तन में जो समझ, बुद्धि अथवा बोध भान हमारे अन्तर उत्पन्न होते रहते हैं यह सब माया है। इन सबसे परे एक और अवस्था हैं जहां न कोई दृश्य है और न बोध भान हैं, जो परिवर्तनशील हों। वहां केवल हम ही होते हैं। हमारे ही "है पने" का नाम सत पद अथवा मुकामे हू है।

मुझे अभी तक केवल इसी शरीर में रहते हुए इसका अनुभव है शरीर त्यागने के पश्चात का अनुभव नहीं है। अनुमान है। मैं कोइ दावे से नहीं कहता हूं। हां! इतना कहता हूं कि इस सत पद अर्थात "है पने" जिसमें कोई विचार, भाव, बुद्धि, मन अथवा शारीरिक संसार नहीं है, में भी एक चेतनता विद्यामान है। वह भी एक समय आता है, मेरा अनुभव है, जब समाप्त हो जाता है फिर आगे सर्व व्यापकता और लयपना हैं।

जहां पुरुप तहां कछु नाहीं, कहें कबीर हम जाना,
जो कोई हमरी सेना समझे, पावे पद निर्वाना॥

अभी यह दशा स्थाई रूप से नहीं हुई हैं। जब होगी यह फकीर न होगा। इस समय तक जो अनुभव है वह यह है कि संसार जैसा है वैसा रहेगा। उस मालिक, प्रकृति का खेल विचित्र है किसी ने पार नहीं पाया। जो पार पाने गया, अपने अस्तित्व को समाप्त कर गया। तो फिर उसका भेद कोई क्या कहे। मैं राम से मिलने के लिये बचपन से निकला था। क्या परिणाम हुआ, वह बता रहा हूं। इसमें भी कोई मेरा दावा नहीं है। सन्त कबीर कह गये।

एक कहूं तो है नहीं, दूजा कहूं तो गार।
जैसा है तैसा रहे, कहे कबीर विचार॥

मानवीय जीवन सुख, प्रसन्नता चाहता है। इस लिये इस पुस्तक में केवल सत पद तक का ही उल्लेख है। ऊपर के अलख, अगम, अनामी का उल्लेख नहीं है। वह प्रसन्नता और अप्रसन्नता से न्यारी वस्तु है।

अभी मैं इस तन में हूं, क्यों, ज़ाने वह मौज अपार।
उसकी लीला समझ न आयी, मैं तो गया हूं हार॥
जितनी आयी उतनो कह चला, उस मौज के अनुसार।
चाहता हूं यह तन अब छूटे, भूलूं, कुल संसार॥
बुलबुला चेतन दयाल फकीर है, यही सार का सार।
अगर इससे आगे और पता लगा, कह जाऊंगा हेला मार॥

अब उस मार्ग का उल्लेख करता हूं जो अनामी धाम तक जाकर सर्वव्यापकता में प्रवेश होने तक मार्ग में आते हैं। यह मैं सन्तों की वाणी द्वारा सिद्ध करूंगा यदि अपनी ओर से कहूंगा तो प्राणी विश्वास न करेंगे। इसलिये इस मार्ग पर पहले जो चले हैं उनकी बाणी भेंट करता हूं। (पोथी सार बचने से)

शब्द स्थान पहला

सुन री सखी तोहि भेद बताऊं। प्रथम अस्थान खोल कर गाऊं
सहस कंवल दल नाम सुनाऊं। ज्योति निरंजन बास लखाऊं
करता तीन लोक यह ठाऊं। वेद चार इन रचे जनाऊं॥
ब्रह्मा विष्णु महादेव तीनों। पुत्र इन्हीं के हैं यह चीन्हों॥
कुल वैराट रचा इन मिलके। जीवन घेर लिया इन पिलके॥
जाल बिछाया जग में भारी। इनकी पूजा जीव सम्हारी॥
फंसे जाल में पचे कर्म में। धोखा खाया पड़े भरम में॥
अब जो इनको कोई समझावे। सत्त पुरुष का भेद लखावे॥
तो नहिं मानें झगड़ा ठानें। पक्षपात कर ढिग नहिं आवें॥
याते मैं तोको समझाऊं। यह सब ठग खुल कर जतलाऊं॥
इनके मारग तू मत जाय। तू संतन की शरन समाय॥
सतगुरु कहे सोई तुम मानो। इनका बचन न कर परमानो॥
राह रकाना देऊं दरसाई। पता भेद अब कहूं जनाई॥
मन और सुरत जमाओ तिल पर। घेर घुमर घट आओ पिलकर
निरखो खिड़की देखो चौका। चित्त लगाओ राखो रोका॥

पचरंगी फुलवारी निरखो। दीप दान घट भीतर परखो॥
कोई दिन ऐसी लीला देखो। नील चक्र ता आगे पेखो॥
विरह प्रेम बल ताको फोड़ो। ज्योति निहारो मन को मोड़ो
अनहद घन्टा सुन सुन रीझो। संख बजाओ रस में भीजो॥
यह पहला अस्थान बताया। राधास्वामी बरन सुनाया॥

सुन लिया शब्द ! इसकी पूर्ण व्याख्या निज अनुभव के आधार पर करता हूं। क्यों कि मैं उस प्रकृति से इसी लिये बना हूं।

तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेसा।
दुखी जीव को अंग लगाकर, लेजा गुरु के देसा॥

मेरा अंग मेरी वाणी है। और इस वाणी को सतसंग द्वारा वचन अथवा लेख द्वारा बढ़ाता रहता हूं जिससे कि संसार के दुखी, अशान्त प्राणी इसको अपनायें और सुख, शान्ति, निर्भ्रान्ति की अवस्था को प्राप्त करें।

मैं जान बूझकर इस वर्तमान गुरुत्व की रोचक और भयानक वर्णन शैली से सहमत नहीं हो रहा हूं। यद्यपि पन्थ में सम्मिलित करने के लिये इन बातों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अब समझो :-

रात को बाहर बैठ कर आंख खोल कर देखो ऊपर आकाश में असंख्य तारागण हैं या नहीं, दिन को

सूरज नज़र आता है अथवा नहीं। यह क्या है? लोक लोकान्तर, उनकी किरनें इस पृथ्वी पर प्रभावित होती हैं अथवा नहीं। सोचो, यदि शास्त्रों या ऋषियों की प्राचीन वर्णन शैली ग़लत मालूम होती है तो वर्तमान विज्ञान की सहायता लो। प्रत्येक लोक से रेडिएशन आ रही है। और जो जो लोक, तारा मण्डल, जितना पृथ्वी के निकट है उतनी ही उसकी रेडिएशन अधिक पड़ती है। यह जिस प्रकार वनस्पति आदि की उत्पत्ति है सब पर लोकों और मण्डलों का प्रभाव है। ९२ प्रकारकी धातु वर्तमान विज्ञान ने सिद्ध की हैं जो कि इस संसार में प्रत्येक व्यक्तित्व में अपने अपने स्थान पर विद्यमान हैं। हमारी शारीरिक रचना करने बाला, स्थिति रखने वाला और फिर नष्ट करने वाला कोन हुआ? यह समस्त रचना और सृष्टि। प्रत्येक तारागण के प्रभाव हमारे अस्तित्व के विभिन्न अंगों पर विभिन्न पढ़ता रहता है। दूसरे शब्दों में हमारे शरीर के अन्तर जितने अंग और उन के कर्म हैं वे सब के सब क्या हैं? इन उपर के लोकों की रेडिएशन के बने हुए हैं। जो व्यक्ति इन तारागणों आदि के पूर्ण ज्ञान से परिचय रखते हैं वे ज्योतिषि

कहलाते हैं। वे अधिक सीमा तक यदि उनका हिसाब ठीक हो तो प्राणी अथवा देश की वर्तमान और भविष्य के सम्बन्धों में जानकारो करा देते हैं। उनका ज्ञान ठीक होता है किन्तु ज्योतिष विद्या या तारागणों के ज्ञान तक ही यदि प्राणी अपने आपको सीमित रखेगा तो सदैव के लिये वह शारीरिक दुख, सुख, जन्म मरण से नहीं बच सकता है। क्योंकि इस सूर्यलोक जिसका नाम विराट पुरुष है उसका खेल ही यही है कि वह इन तारागण, सूर्य चन्द्र नवग्रह आदि के द्वारा स्थूल पदार्थ के जगत को बनाता बिगाड़ता रहता है।

अब सोचो! हमारे सांसारिक जीवन के जितने खेल हैं। जो कुछ हो रहा है यह सब का सब इस विराट पुरुष का काम है।

जैसी-जैसी प्रकृति अथवा रेडियेशन आहार द्वारा अथवा आकाश मण्डल से प्रत्येक जीव जन्तु को मिलती है। वैसा-वैसा वह जीव जन्तु शारीरिक रूप से गतिशील रहने के लिये विवश है।

जिस प्रकार वर्तमान वैज्ञानिक मशीन बना कर उससे विशेष कार्य लेते रहते है। इसी प्रकार यह

विराट पुरुष विभिन्न लोक लोकान्तर बनाकर विभिन्न जीव जन्तु आदि बना-बनाकर इनको गति शील रखता है। इसमें तीन शक्तियां हैं जो उत्पन्न करती हैं, स्थित रखती हैं, और विनाश करती हैं। यही ब्रह्मा, बिष्णु और महेश हैं।

यहां जो कुछ भी शारीरिक रूप से स्थूल जगत में हो रहा है यह स्वाभाविक है और इस विराट पुरष का खेल है। भूचाल, बाढ़, वर्षा, सूखा, रोग महामारी आदि ये क्या हैं? इस विराट पुरुष की माया है। तो जीवन, मृत्यु अथवा इन समस्त प्रकार के परिवर्तनों से कौन व्यक्ति है जो जाग्रत अवस्था में प्रभावित नहीं हो सकता है। जब इस रहस्य से पूर्ण परिचय हो जाता है तो फिर इस रचना के प्रत्येक परिवर्तन में जन्म और मृत्यु आदि की दशाओं में प्राणी परवाह न करता हुआ अचिन्त रह सकता है। यह समस्त प्रकार के परिवर्तन इस ज्योति स्वरूप की ज़ात पर आधारित हैं। यह एक नियम के अनुसार कार्य कर रहा है। इसके कर्म जो प्राकृतिक हैं इनको समझकर मानव वास्तविक और सच्ची प्रसन्नता और आनन्द ले सकता है।

कौन सन्त साधु या महात्मा है जो इस रचना अर्थात विराट पुरुष या ज्योति स्वरुप के कर्म के अन्तर्गत नहीं आता है। कौरवों और पाण्डवों का युद्ध हुआ, अर्जुन ने लाख प्रयत्न किया कि न लड़ें किन्तु हुआ क्या ? श्री कृष्ण ने उसको ज्योति स्वरूप की लीला दिखाकर सिद्ध कर दिया कि यह पहले ही मरे हुये हैं। ऐसे ही ऐ मित्रो ! सच्ची प्रसन्नता के चाहने वालो ! तुम इस प्रथम स्थान के खेल को समझो। स्वयं सच्चा वैराग्य आ जायेगा और तुम धन, स्त्री, और सम्पत्ति के सव कार्य करते हुये, इस समझ से इनके परिवर्तनों के समय प्रसन्न और शान्त रह सकते हो साथ ही अपनी सुरत को किसी विशेष केन्द्र पर ठहराने के साधक भी हो जाओ और वह केन्द्र बाहर का पूर्ण पुरुष बताता है।

इसके अतिरिक्त तनिक मेरे और मेरी वाणी के साथ चलो। इस ज्योतिस्वरूप की किरणें, धारें प्रत्येक व्यक्तित्व में प्रकाश के रूप में विद्यमान है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें प्रत्येक जीव जन्तु अथवा प्रत्येक स्थान पर रहती है। समझ गये। इसका कर्म फैलाना है और यह ज्योतिस्वरूप हमारे अन्तर मन वन कर समस्त इन्द्रियों में विद्यमान है।

यदि इसके कर्म को, फैलाव को, एक विशेष ढंग से चलाओगे, दूसरे शब्दों में अपने मन अथवा वासनाओं को नियन्त्रण में रखोगे तो तुम्हारा यह शरीर का कर्म श्रेष्ठ होगा अन्यथा निकृष्ट। इस समस्त रचना में जो विराटपुरुष में है एक ही नियम कार्य करता है।

स्पष्ट शब्दों में अपने मन वचन और कर्म पर नियंत्रण पाना अनिवार्य है। यह नियन्त्रण पाने का नियम कौन वताता है? वह जो इस ज्योतिस्वरूप से बड़ा है। जिससे जो यह ज्योतिस्वरूप निकलता है, बनता है, वह है स्थान ओंकार, निरङ्कार ! वो स्थूल जगत का नहीं है बल्कि सूक्ष्म पदार्थ का है जिसका दूसरा नाम अक्षर है, जो शक्ति ज्योतिस्वरूप जिसका अंश हमारे अन्तर हमारा स्थूल मन है, उस को चलाती है, वह गुरु है। इस रहस्य का ज्ञान रखते हुये इन सच्चे साधुओं ने इस संसार के रहने वाले जीवों को "शुभ सङ्कल्पं अस्तु" की शिक्षा दी थी ! यह ऋषिमत है।

इस स्थूल जगत में जो कुछ हो रहा है। वह सब कर्म का खेल है। कर्म विचार है इसका घना

रूप और साधन हमारे बाहरी कर्म बन जाते हैं। और हमारे सामूहिक विचार और कर्म इस विराट पुरुष के कर्म वन जाते हैं।

मेरे पुत्र शाह धर्मजंग की मृत्यु हुई। मैंने उसकी मृत्यु के पूर्व ऐसा कहा था। क्योंकि मैं उन विचारों को जानता था जो मेरे घर में रहते थे। मैं सहायता न कर सका। क्यों ?

"कर्म प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस कीन्ह सो तस फल चाखा॥

देश के युद्ध, लड़ाई झगड़े, बरबादियां, स्मृद्ध-शालता, प्रसन्नता यह सब कर्म की फ़िलासफ़ी के अन्तर्गत हैं। अधिक व्याख्या क्या करूं। समझाने के लिये एक उदाहरण देता हूं। सन् १९४२ में एक व्यास के सतसंगी पुरी साहब और उनके साथ एक एंजीनियर मेरे निवास स्थान पर आये। उन्होंने अनेक प्रश्न किये और हुज़ूर सांवलेशाह के चमत्कारों का उल्लेख करते रहे। मैं हंसा। उनसे कहा कि जितनी बातें तुम करते हो यह रोचक और भयानक हैं। मैं कहता हूं जो कुछ किसी को मिलता है वह उसके अपने ही कर्म और भाव, विचार होते हैं।

वे नहीं माने । मैंने हंसकर कहा भाई, यदि उनके हाथ में होता तो अपने पुत्र को न मरने देते । इस पर उनको क्रोध आया । मैंने एक पत्र तुरन्त हज़ूर सांवलेशाह को लिखा और इन दोनों सज्जनों के प्रश्न और अपने उत्तर लिख भेजे और निवेदन किया कि सतसंगियों को ठीक मार्ग पर लायें अथवा मुझे आदेश दें । और वह पत्र मैंने उन पुरी साहब को दिया कि डाकखाने में डाल दो । १५ दिन पश्चात हुज़ूर सांवलेशाह की पवित्र, पुनीति विभूति का पत्र आया । वह लिखते हैं फ़कीर । तुम वास्तव में फ़कीर हो । तुम्हारा विचार नितान्त सत्य है । ये बेचारे अभी उस अवस्था तक नहीं पहुंचे हैं ।

इस समय लाखों सतसंगी अपने जीवन के कल्याण हेतू सुरत शब्द योग की शिक्षा के अन्तर्गत हैं । किन्तु उनको वास्तविकता और सत्यता जिससे कि इनका कल्याण हो, का पता तक नहीं है । और न इन सतसंगों में जीवों के सच्चे कल्याण का उपदेश दिया जाता है । भेड़ घसान चाल चली जा रही है । सतसंग करते युग बीत गया । इसलिये मैं मौज अधीन प्रगट होकर शिक्षा को स्वच्छ किये जा रहा

हूं, कि यदि इस स्थान के रहने वालों को सफलता की आवश्यकता है तो "शुभ संकल्पम् अस्तु" के नियम को अपनाओ अन्यथा जैसा सोचोगे वैसे ही बनोगे ।

मुझे चूंकि परमार्थ के अतिरिक्त जगत कल्याण का कर्तव्य भी पालन करना है इसलिये विवशतः कहे जा रहा हूं कि वर्तमान देशीय सामाजिक, और घरेलू परिस्थितियों को यदि ठीक न किया गया तो ज्ञात नहीं मानव जाति आगे चल कर क्या-क्या आपत्तियां और कष्ट सहन करेगी ।

किन्तु जो अपने जीव का उद्धार चाहते हैं । और इस चक्र से बचना चाहते हैं उनके लिए एक बात कहता हूं कि अपने अन्तर उस मालिकेकुल, परम तत्व, जहां दुख सुख, पाप-पुण्य, जन्म मरण नहीं है उसकी इच्छा रखते हुए अपने अन्तर अजपाजाप से ज्योतिस्वरूप को पहले प्रगट करो । फिर इससे आगे जाओ । इस चरण में मैं केवल इसी स्थान का उल्लेख करूंगा आगे का नहीं। साथ ही अपनी वासनाओं को "शुभ संकल्पम् अस्तु" के नियमानुसार करो । किसी के साथ मित्रता, शत्रुता, द्वेष, इर्ष्या मत

रखो। जो २ पिछले कर्म हैं वे तो भुगतने अनिवार्य हैं किन्तु इस साधन से तुम को यह लाभ होगा कि साधन के समय बहुत से कर्म कट जायेंगे। जो यहां तक ही रह जाते हैं, उनको दूसरा जन्म अच्छा और श्रेष्ठ मिलना चाहिए, जिससे कि वे आगे की कमाई कर सकें। यदि सतसंग किसी पूर्ण पुरुष का करते हो तो उसकी रेडियेशन और वचन तुमको ऊपर जाने के लिये विवश कर देंगे।

अब रहा प्रश्न इस स्थान पर जो घंटा और शंख की ध्वनि आती है यह क्या है? वर्तमान युग के बुद्धिमान इन आन्तरिक शब्द आदि को मस्तिष्क की त्रुटि कह देते हैं। इसलिये इनकी व्याख्या कर देना चाहता हूं।

यह आकाश मण्डल आदि सब गतिशील हैं। इनकी गति किसी विशेष नियमानुसार है। इस विराट पुरुष में जो किसी स्थूल पदार्थ का लोक है, की गति से बड़ा भारी शोर होता रहता है। हमारे कान अनभिज्ञ होने के कारण वाहर के शब्द को सुन नहीं सकते हैं किन्तु हो रहा है। रेलगाड़ी, वायुयान

की गति से ध्वनि आती है या नहीं, तो क्या इस सूर्य लोक की गति की ध्वनि नहीं है ? अवश्य है।

हमारे शरीर में जितना स्थूल पदार्थ है उसकी गति की ध्वनि शंख के समान है। और चूंकि इस शरीर में अथवा बाहर के जगत में विभिन्न प्रकार की धातु है। उनकी पारस्परिक गति से जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह घन्टा अथवा आरती के समान होती है। अनेक सज्जन अपने अन्तर साधन के समय सुनते भी हैं. जब यह ध्वनि घन्टा और शंख सुनाई देने लगे और ज्योतिस्वरूप के दर्शन होने लगें तब कुछ दिन के साधन के पश्चात् केन्द्र अथवा स्थान को बदलदो।

किन्तु स्मरण रखना यदि धन, स्त्री और सम्पत्ति के सम्बन्धों से ज्ञान द्वारा पृथक नहीं हुए हो तो कुछ समय की भावुकता या वैराग्य के साधन के पश्चात् बस यहीं तक रह जाओगे। आगे न जा सकोगे।

यदि मन के विचार अधिक चंचल हों तो प्रेम और प्रीति को बढ़ाओ। भक्ति मार्ग से चलोगे तो सफलता शीघ्र मिलेगी। किन्तु अज्ञान की भक्ति से

जब बुद्धि तीव्र होगी गिरावट आ जायेगी। इसलिये सोच समझ के साथ चलो। निन्द्रा का कोप साधारणतः तमोगुणी वृत्ति वालों पर होता रहता है। कुछ प्रेम की कमी के कारण बल पूर्वक साधन करते हैं। उनके मस्तिष्क बिगड़ जाने का भय रहता है। प्रेम तेल का कार्य करता है।

सबसे आवश्यक वस्तु किसी पूर्ण पुरुष की संगत और उसके आदेशानुसार चलो। वह तुम्हारी प्रकृति, गुण, कर्म, स्वभाव और प्रस्थितियों आदि का विचार रखकर श्रेष्ठ सम्मति दे सकता है। यह गुरुमत है।

घट में गुरु बिन राह न चलना।
राह में बिघ्न अनेकन मिलना ॥

मैं और भी अधिक लिखना चाहता था। परन्तु सोचता हूं कि साधन का विषय है किसी की हानि न हो। इसलिये साधन के विषय को मौखिक रूप में निर्णय अपने-अपने गुरुओं से करा लो।

अब गुरुओं और महात्माओं को कहना चाहता हूं कि अपने नाम और धाम और डेरे आदि के लिये त्रूटि पूर्ण बातें कह कर जनता को मूर्ख न बनाओ। इसमें दूसरों के साथ साथ तुम्हारी अपनी भी

हानि होगी ।

अनेक सज्जन यह समझते हैं कि विना साधन
के, विचार से भी हम सुखी रह सकते हैं । ठीक होगा
किन्तु दुख आया विशेष प्रकार के बाहर के प्रभाव
मस्तिष्क पर पड़े । विचार द्वारा समझ लिया है कि
यह ऐसा ही होना था किन्तु वृत्ति जब तक इन विचारों
से दूसरी ओर किसी स्थान पर न टिकेगी वह विचार
बार-बार आते रहेंगे । यदि एक विचार की ओर से
दूसरे विचार की ओर लगाओगे तो समय आयेगा
वह विचार भी बदलेगा । इसलिए यह आवागमन का
चक्र अथवा मन का चक्र समाप्त न होगा । वास्तविक
केन्द्र तो मानवीय सुरत का अपना ही आपा है ।
किन्तु जब तक सुरत अपने समस्त कोषों को न
उतारेगी, स्थायी सौख्य, शान्ति का प्राप्त होना मेरे
अनुभव में नहीं आया । किसी दूसरे का पता नहीं है
शेष अगले चरण में ।

परम दयाल जी की मौज

तृतीय चरण

आज रविवार को लगभग छः व्यक्ति धींगा मुस्ती घर पर आये विचार हुआ कि यह संसार क्या है ? यहां प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी धुन में व्यस्त है। भागा फिरता है। यह विचार करते हुए अपना जीवन सम्मुख आया। मैं भी कभी भागा फिरता था। कहां बसरा बगदाद और कहां राधा-स्वामी धाम और लाहौर। किसी वस्तु की खोज में अरे फ़कीर ! तुमने क्या कुछ नहीं किया। दाता दयाल महर्षि जी महाराज का मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है जिन्होंने मेरे अज्ञान को मिटा दिया। उनकी आज्ञा और मेरी सहानुभूति अपने जैसों के लिये, विवश करके यह खेल खिला रही है। जब तक शरीर मन और आत्मा है यह केन्द्र स्थित हैं। इसे अपना कार्य करना है। यह मौज है। किसी के वश की बात नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति को ऋण से उऋण होना है। जब तक ऋण का भुगतान नहीं होता है। यह लेना

देना, आना जाना आवश्य रहेगा। मुझ पर भी ऋण ही है। तन का क़र्ज़ा, मन का क़र्ज़ा, रूह का कर्जा सिर पर है।

तन का क़र्जा मन का कंर्जा, रूह का क़र्जा सिर पर है।
उतारने की कोशिश करता, शुक्र है और नहीं बढ़ता है॥
आश जब तक तन की मन की, या हो आनन्द की।
तब तक यह क़र्ज़ा सिर पर, हर एक के चढ़ता है॥
दाता दयाल ने दया की, बे आस मुझको कर दिया।
गो आस वालों के संग रह, फ़कीर मत्था रगड़ता है॥
एक क़र्ज़ा बाक़ी है, कह जाऊंगा अंजामे ज़िन्दगी।
क्या खबर उसी के लिये, फ़कीर इस तन में विचरता है॥
विराट देश की सैर, पूरी अब है हो गई।
त्रिकुटि को भी देखकर, दिल अब उससे उचटता है॥
सुन्न में रह मस्ती ली, और मस्त होकर देख लिया।
बन के खुद सुहंगम, उसका भी अनुभव हो गया।
सत में जाकर नूर, और प्रकाश के मण्डल फिरा।
सुरत नहीं वहाँ नित रहती, यह भी झगड़ा हुआ॥
शब्दो प्रकाश दायम हैं नहीं, यह समझ गया।
ज़ात मेरी से निकल कर, खेल करते हैं सदा॥
था मैं कौन, क्यों आया, फंस गया खेल में।
गुत्थी नहीं सुलझे थी, अपनी खुल गई दाता के मेल में॥
देश मेरा ज़ात मेरी है, इक सुन्दर महान।
जहां नहीं शब्दो प्रकाश, न ही कोई ज्ञान॥

तत्व है प्रधान ऐसा, कैसे करूं उसका बयान।
रोशनी भी है नहीं, न अन्धेरा वह लाबयान ॥
स्वामीपन है नहीं, और न ही कोई दासपन।
एक अखण्डम ज़ात है, लामकानी पुर अमन ॥
ठहरा नहीं जाता वहां. यह धक्के खाके आता हूं।
यह मुअम्मा जिंदगी का, ससझ नहीं पाता हूं ॥
मौज है या कर्जा है, दयालु जल्दी खत्म कर।
छुड़ा के तन मन और रूह से, अपनेपन में गुम कर ॥

सन् १९०५ में अपने जीवन में राधास्वामी धाम और राधास्वामी नाम का इष्ट मिला था। पहले तो पता ही न था, केवल भाव अथवा कुरेद किसी अनभिज्ञ वस्तु की मुझे हुजूर दाता दयाल महर्षि जी की शरण में ले गई थी। समस्त आयु क्रियात्मिक रूप से खोज में व्यतीत हुई। अव आकर अनुभव हुआ कि क्यों राधास्वामी दयाल ने अपना इष्ट सतपद से आगे अलख, अगम और अनामी से परे राधास्वामी पद का दिया।

शव्द और प्रकाश के मण्डल में ठहरने के लिए कुछ न कुछ करना पड़ता है। उसको ठहराना पड़ता है। जो वस्तु किसी न किसी प्रकार के परिश्रम से प्राप्त की जाती है वह स्थायी नहीं रह

सकती। इसलिये वास्तविक स्थाईपन कहां है? वह अपनी ही ज़ात में है। अपने ही आप में है। क्या पता जिज्ञासुओं ने इसी को अकाल गति, अनाम गति, परम तत्व या राधास्वामी धाम का नाम दिया हो। यह वह जानें। उस ज़ात का अनुभव मुझे हुआ। किन्तु फिर यह खेल क्यों होता है?

उस स्थान अथवा अवस्था से जितनी अन्य सोपानें अथवा बोध भान हैं यह सब उस आदि अवस्था के कोष हैं। वह उसी ज़ात की क्षोभ की गति से उत्पन्न होते हैं और उसी में समाते रहते हैं। फिर यह जीवन क्या है? "लब खुले और बंद हुए, यह राज़े ज़िदगानी निकला। सृष्टि का प्रवाह चल रहा है। तत्व में गति होती रहती है। अनेक प्रकार के लोक लोकान्तर, सूर्य, चन्द्र, तारागण बनते और बिगड़ते रहते हैं और प्रत्येक स्थान पर नाना प्रकार की रचना से जीव जन्तु उत्पन्न हो होकर उसी में लय होते रहते हैं।

किसने पाई थाह उसकी, जो गया वह गुम हुआ।
वहम था खोज का मुझको, वह वहम अब खत्म हुआ
जिन्दगी यह गुज़रती है, मौज के बस आसरे।

अपनापन जो भरम था, वह मेरा सब खत्म हुआ ॥
उसी मौज के सहारे, यह खेल मेरा है हो रहा ।
आया और गया कोई, यह मौज का मंज़र हुआ ॥
तन मन और रूह के, खेलों को हूं देखता ।
देख कर मस्त हूं, और मस्ती में हूं गा रहा ॥

———————

किन्तु जिनको अभी तक इस रहस्य का पता नहीं है वह बेचारे इन कोषों में ही फंसकर चिन्ता और प्रयत्न आदि करते रहते हैं ।

कोई भागा हुआ व्यास को जाता है ।
कोई दुखी हो कर मेरे पास आता है ॥
किसी ने मन्दिरों मस्जिदों में जाके सर मारा ।
और कोई क़ाबे में जा कर पुकारा ॥

————————

ऐ मित्रो ! कहीं कुछ नहीं है । प्रत्येक स्थान पर भूले भटके जीव को बालक की भांति दिलासे दिये जाते हैं और संसार इन दिलासों में आकर खेल रहा है । यह भी धन्य हैं । किन्तु जिसको कुछ मिलता है वह उसके अपने ही कर्म हैं अथवा मानव का अपना ही विश्वास है । हे मानव ! तेरा सहायक तेरे पास है । वह तेरी अपनी ही आस है । जो कुछ मुझ को दाता दयाल की दया से मिला है वह यही

है जो मैं जीवों के हित के लिये वर्णन करता रहता हूं ।

एक आस एक विश्वास, एक सहारा रक्खो ।
वह तुम्हारा है तुम उसके हो, मन में वह प्यारा रक्खो ।
आश कर उसकी दया की, हो निराश न तूं कभी ।
जो निराश हुआ समझ ले, तू न उसका दास कभी ।।

तुम कहोगे फिर यह गरु मत क्या है ? मेरा उत्तर है कि गुरु मत है :—

घर में घर दिखलाय दे, सो सतगुरु चतुर सुजान ।

गुरु मत है । मानव को मानव के अन्तर ही सब कुछ दरशा देना, दिखा देना निश्चय और विश्वास करा देना । बाहर मुखी से अन्तर मुखी बना देना, भ्रम संशय और संदेहों से मुक्त करा देना । इसके लिये गुरु की खोज करो जो तुमको इस गति तक ले जाय । वह जो वास्तविक तत्व मालिक है जो तुम्हारा सहायक है वह तुम्हारे अन्तर ही में रहता है । चूंकि उस के ऊपर बहुत से कोष चढ़ें हुए हैं, इसलिये बाहर के गुरु की दया से, उसकी संगति से उसके वचनों को समझकर विचार करने से वह कोष उतर जायेंगे और तुमको अपने सच्चे सहायक के वास्तविक दर्शन हो जायेंगे और तुम सदैव के लिये निःआश्रय, निर्धनता

कष्ट, क्लेश और चिन्ता से मुक्त हो जाओगे।

दूसरे चरण में मैंने शारीरिक और स्थूल पदार्थ के मंडल का उल्लेख किया है, और आपको बताया है कि इस स्थूल रचना में उन्नति, सुख, सफलता का आधार अंतर में ज्योतिस्वरूप के दर्शन, घंटा और शंख की ध्वनि को सुनना है और अपनी वासनाओं को अनुकूल बनाना है।

यह मानवीय जीवन निःसन्देह शारीरिक और सांसारिक रूप से सुखी किन्तु फिर भी यह मन नाना प्रकार के विचार उठाने के लिये विवश है। इस मानसिक जगत को अनुकूल बनाने और इस से आगे जाने के लिये दूसरे स्थान की सैर और उससे आगे जाने की आवश्यकता है।

शब्द स्थान दूसरा

अब चलो सजनी दूसर धाम। निरखो त्रिकुटी गुरु का ठाम॥
ओंकार धुन जहां विश्राम। गरजे बादल और घनश्याम॥
सूरज मण्डल लाल मुक़ाम। गुरु ने बताया गुरु का नाम॥
पंचम वेद नाद यही गाया। चहुं दल कंवल सन्त बतलाया॥
घंटा शङ्ख तजी धुन दोई। गरज मृदङ्ग सुनाई सोई॥
सुरत चली और खोला द्वार। बंकनाल धस हो गई पार॥

ऊंची नोची घाटी उतरी। तिल की उल्टी फेरी पुतरी ॥
गढ़ भीतर जाय कीन्हा राज। भक्ति भाव का पाया साज ॥
कर्म बीज अब दिया जलाई। आगे को फिर सुरत बढ़ाई ॥
नौबत झड़ती आठों जाम। सूरत पाया मूल कलाम ॥
महाकाल और कुरम वखाना। उत्पत्ति बीजा यहां से जाना ॥
सूरज, चांद अनेकन देखे। तारामण्डल बहु विधि पेखे ॥
पिड अंड से न्यारी खेली। ब्रह्मण्ड पार चली अलबेली ॥
बन और पर्वत वाग़ दिखाई। चमन चमन फुलवारी छाई ॥
नहरें नदियां निर्मल धारा। समुन्द्र पुल चढ़ हो गई पारा ॥
मेर सुमेर देख कैलाशा। गई सुरत जहाँ विमल विलासा ॥
राधास्वामी कहत पुकारी। दूसर मंज़िल कर ली पारी ॥

———————

यह हमारा मन मस्तिष्क के भीतर जहां बैठ कर यह सब कुछ सोचता है और नवीन-नवीन अविष्कार उत्पन्न करता है। उसका नाम त्रिकुटी है। ध्येय, ध्याता और ध्यान। ज्ञानादि का यही केन्द्र और यही गुरु का स्थान है। स्पष्ट शब्दों में तुम्हारे अपने मन अथवा विचारों का ठहरना ही गुरु की प्राप्ती है। वाणी स्पष्ट कह रही है :—निरखो त्रिकुटी गुरु का ठाम या मुकाम।

हे वर्षों के जिज्ञासुओ! मैं दर्दे दिल रखकर मानव जाति के लिये कार्य करता हूं। जिससे कि तुम्हारे

भ्रम, शङ्कायें और सन्देह समाप्त हो जायें। मैं तुमको अपने पीछे नहीं लगाना चाहता हूं। जीवन खोने के पश्चात जो समझ में आया है वह कह रहा हूं। सतसंग की बात तो कोई समझता नहीं है। भेड़, धसान चाल चली जा रही है। गुरु और महात्माजन अपने अज्ञान और स्वार्थ वश तुमको सच्ची बात नहीं बता रहे हैं। यह ओंकार की ध्वनि जो इस स्थान पर उत्पन्न होती है और लाल रंग का सूर्य जो भक्त जन, साधू जन अपने अन्तर देखते हैं क्या है ? मानव के मन की वासनायें जो जन्म जन्मान्तरों की और इस जन्म के बाहरी प्रभावों से जो इच्छायें मन के भीतर हैं यह एक सूक्ष्म पदार्थ है।

जब यह अन्तर में एकत्र होती हैं तो जिस प्रकार बादलों के इकट्ठा होने से और टकराने से बादल की गरज आदि होती है। इसी प्रकार इनके मस्तिष्क में एकत्र होने से जो शब्द उत्पन्न होता है उसको ओ३म मृदंग की ध्वनि अथवा मेघनाद आदि कहते हैं और जिस प्रकार बादलों की रगड़ से बिजली उत्पन्न होती है उसी प्रकार उन आन्तरिक वासनाओं की आपस में

रगड़ से लाल सूर्य का प्रकाश अथवा लाल रंग का प्रकाश उत्पन्न होता है।

यह तुम्हारा मन ही एकत्र हो कर इस स्थान पर एकाग्र होकर अनेक प्रकार के ज्ञान विज्ञान और अविष्कारों को उत्पन्न करता रहता है।

पञ्चम वेद नाद यह गाया, चहुं दल कमल सन्त बतलाया।

वेद ज्ञान का भण्डार है, इस मन से ही नाना प्रकार की विद्यायें और आविष्कार आदि उत्पन्न होते हैं। और यह चार प्रकार के ज्ञान जो चारों वेदो में अङ्कित हैं कहां से निकले ? इस त्रिकुटी के स्थान से। वह शब्द ओ३म है अथवा उसका कोई और नाम रख लो। तात्पर्य केवल आन्तरिक शब्द से है। जिस प्रकार की वासना होगी तो जब मानव अपने अन्तर इस वासना को लेकर एकाग्र होगा तो इस वासना की पूर्ति के लिये उसके अन्तर से नए-नए भाव, विचार और उपाय उत्पन्न होते रहेंगे और जब तक मानवीय सुरत इस ओ३म अर्थात त्रिकुटी के स्थान से ऊपर न जायेगी, मन के चक्र से न निकलेगी और वह इस त्रिगुणात्मिक जगत अर्थात मानसिक खेल से न निकल सकेगी।

मैं समझता हूं कौन समझेगा मेरे भाव को।

फिर भी रोक नहीं सकता हूं मालिक की मौज को।

घण्टा, शङ्ख तजी धुन दोई। गरज मृदङ्ग सुनाई सोई।

साधक घण्टा और शङ्ख की ध्वनि सुनता हुआ जब आगे गया वही शब्द बदल कर मृदंग की ध्वनि हो गया, जैसा कि मैंने पहले चरण में लिखा है कि घण्टा शंख की ध्वनि क्या है? मानव के स्थूल स्वरूप की गति का नाम शंख है और उसके अन्तर के परमाणुओं के मेल से घण्टा की ध्वनि उत्पन्न होती है। जब शारीरिक अभ्यास समाप्त हो जाता है तो मानवीय सुरत अपने व्यक्तित्व प्रकाश से पृथक हो जाती है तो फिर उसकी मानसिक वासनाएं और भय एकत्र होकर ओ३म् मृदंग अथवा मेघनाध जैसी ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इस ओ३म् को सुनते 2 मन सो जाता है, मन की जागृति समाप्त हो जाती है। उस अवस्था का नाम बङ्कनाल है। मानसिक ऊंग छा जाती है और फिर चेतनता आती है। यह चेतनता प्रायःअचेनता कहलाती है।

ऊंचि नीची घाटी उतरी। तिल की उल्टी फेरी पुतली ॥

स्वयम् ही आंख की पुतली ऊपर चढ़ जाती है जिस प्रकार मृत्यु के समय मानव की आंखें फिर जाती हैं।

गढ़ भीतर जाए कीन्हा राज। भक्ति भाव का पाया साज़।

शब्द और प्रकाश स्वरूप हो जाना ही मानव को वास्तविक भक्ति है। यहां केवल वह जा सकता है जो नितान्त इच्छा रहित हो। कई कहते हैं कि नाम जपने से अथवा इस साधन से कर्म दग्ध हो जाते हैं वह किनके, केवल उनके जो दग्ध कराने चाहते हैं या जिन को प्रवल इच्छा है।

लाखों व्यक्ति इस मार्ग में हैं। अपने अन्तर में झाकें फिर बात करें। में इस लेख को लिखते समय इस से पूर्व एक घण्टे के लगभग शरीर और मन से पृथक रहा हूं। तब इस लेख को लिख रहा हूं। इस स्थान को काल अथवा कछुआ और कुरम कहते हैं। अर्थात् नीचे के जितने भाव, बिचार होते हैं। कर्म इन्द्रियां, ज्ञान इन्द्रियां, यह सब एकत्र होकर उस स्थान पर शब्द और प्रकाश रूप में लय हो जाती है।

महां काल और कुरम बखाना।

उत्पति बीजा यहां से लाना ॥
सूरज चांद अनेकन देखे ।
तारा मण्डल बहु विधि पेखे ॥
पिण्ड अण्ड से न्यारी खेली ।
ब्रह्मड पार चली अलवेली ॥ आदि 2

आगे क्या है ? प्रसन्नता, किसी भी वस्तु की प्रसन्नता तुम्हारे ही मन की एकाग्रता की प्रसन्नता है। यह सूर्य, चन्द्र, तारागण जो दृष्टिगोचर होते हैं ये क्या हैं ? तुम्हारा मन इन ऊपर के लोक, लोकान्तरों और तारा मण्डल की किरणों से बना हुआ है और एकाग्रता के समय वही तारागण लोक लोकान्तर सूर्य और चन्द्र आदि की किरणें जिन से कि तुम्हारी मानसिक प्रकृति बनी हुई है रूप धारण कर सम्मुख आती है ।

इस सैर अथवा साधन से तुम्हारे अन्तर प्रसन्नता और आनन्द उत्पन्न होगा जो तुम्हारे मन का अपना ही रूप है ।

गई सुरत जहां विमल तमाशा । मेरु, समेरु देख कैलाशा ॥
राधास्वामी कहत पुकारी । दूसरी मंजिल कर ली पारी ॥

यह लेख इन छः व्यक्तियों के मेरे घर पर आने के कारण लिखा गया है । इन में से तीन तो

ऐसे थे जो घरेलू परिस्थितियों से दुखी थे और आर्थिक संकट में थे। और तीन केवल प्रेम, प्रीति के भाव के अन्तर्गत आये थे। वे कहने लगे दर्शनों के बिना चैन नहीं मिलता था। इस प्रकार के भाव वालों के लिये मेरे चरण न० २ और न० ३ की व्याख्या पर्याप्त है। ऐ संसार के पदार्थों में फंसे हुए मित्रो! ध्यान पूर्वक मेरे विचारों को पढ़ो। कुछ तो मानव के अपने कर्म हैं किन्तु उनकी चिकित्सा अपने अन्तर ज्योति स्वरूप के दर्शन और ध्यान शक्ति है। यदि मन चंचल है तो अजपा जाप सहायक होगा।

मैंने पहले तीन व्यक्तियों को कहा कि तुम ध्यान शक्ति को बढ़ाओ। वह कहने लगे, "महाराज! आप दया करें"। मैं हंसा! और कहने लगा "ऐसी हेर फेर की बातें और कहीं जाकर सुनो"! मैंने बड़ी सत्यता मे कार्य किया है। प्राणी मेरा ध्यान करके सफलता प्राप्त करते हैं। मुझे पता ही नहीं है कि कौन ध्यान करता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि हे मानव! तेरी सहायता करने वाला तेरा ही ध्यान है। यदि कुछ मेरे पास है तो

मैं अनभिज्ञ हूं। अच्छा हुआ कि यदि मेरे पास कुछ है और मैं अनभिज्ञ हूं तो मुझे अहंकार नहीं हुआ। सम्भव है रेडियेशन (प्रकाश) कार्य करता हो।

दूसरे तीन व्यक्तियों को मैंने कहा, बुरा न मानना ! तुम्हारा मानसिक और शारीरिक ब्रह्मचर्य गिरा हुआ है। इस को ठीक करो। मन की निर्बलता के कारण सहारे की आवश्यक्ता सदैव निर्बल और अबल जीवों को होती है। मैं भी ऐसा ही था। मुझे भी, आहा ! उस पवित्र पुनीत बिभूति जिनकी मूर्ति (स्टेचू) सम्मुख है, ने सहारा दिया था।

मैं तो तुम्हारा गुरु नहीं बना और न मुझे आवश्यकता है। अपने २ गुरुओं के पास जाओ। उन से प्रेम करो। उनका सहारा लो। हां भाईचारे के नाते तुमसे प्रेम करता हूं। मैं नहीं चाहता कि कोई मेरे घर पर आये। सत्संग कराने का ऋण सिर पर है, वह करा देता हूं। मासिक सत्संग नगर में होता है। आकर सुन सकते हो, किन्तु अब चलो-चली का समय निकट है। फंसा हुआ कार्य करता हूं। मौज।

नोट :-मौज मस्तिष्क को प्रेरणा करती है। मैं कोई

विद्वान् नहीं हूं। जो मौज को स्वीकार है करा रही है। प्रिय मुन्शीलाल "विश्वप्रेमी" जी, खुशी हो तो मेरे इन विचारों को प्रकाशित करें खुशी न हो न करें।
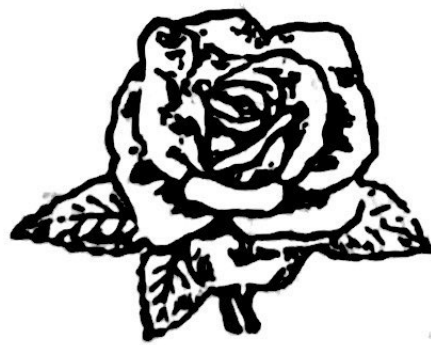
परम दयाल जी की मौज

चतुर्थ चरण

सफ़रे ज़िंदगी अभी ख़तम नहीं होता ।
इसलिये मौज से काम हूं करता ॥

आज डाक्टर सरदारी लाल के पास अपनी स्त्री की औषधि लेने के लिये गया । वहां वार्तालाप में डाक्टर साहब ने कहा कि प्रकृति के खेल का कुछ पता नहीं लगता है । यह सज्जन सनातन धर्म के अनुयायी हैं उन्होंने भागवत की कथा का उदाहरण देते हुए कि जब श्री कृष्ण ग्वाल बालों के साथ खेल कर रहे थे और एक दूसरे को अपना २ जूठा भोजन खिला रहे थे तो ब्रह्मा जी ने देखा और कहा कि हम इस को ब्रह्म का अवतार मानते हैं, किन्तु यह कृष्ण तो ग्वालों का जूठा भोजन खा रहा है । उसको भ्रम हुआ और उसने परीक्षा के लिये इन के बछड़े और ग्वाल बाल चुरा लिये । ब्रह्मा के एक दिन के पश्चात् जब यहां एक वर्ष हो गया वह आया और देखा कि वही बछड़े और ग्वाल बाल सब श्री कृष्ण के साथ हैं अर्थात् अपनी माया से दूसरे बना लिये । इस पर

वह लज्जित हुआ और फिर ब्रह्म लोक में गया। वहां द्वारपाल ने प्रश्न किया कि आप कौन हैं? उसने कहा ब्रह्मा हूं। इस पर द्वारपाल ने प्रश्न किया कि आप कौन से ब्रह्मा हैं? किस देश के ब्रह्मा हैं! वह चकित हुआ कि यहां अनेक प्रकार की रचना है और अनेक ब्रह्मा हैं। डाक्टर साहिब ने कहा कि ऐसी बातें समझ में नहीं आती हैं।

मुझे स्मरण है अपना बचपन जब महाभारत और रामायण आदि पढ़ कर मौज के अनुसार उस परम तत्व, मालिक के दर्शनों की तीब्र इच्छा उत्पन्न हुई थी। और वही भाव मुझे हजूर दाता दयाल महर्षि जी की पवित्र पुनीत, विभूति जो ज्ञान स्वरूपी सत्गुरु के रूप थे चरणों में ले गया था। वहां सन्तमत तथा राधास्वामी मत की शिक्षा और आन्तरिक चढ़ाई आदि का विचार मिला था। समस्त जीवन इसी धुन में बीत गया। अब इस भूलोक में थोड़ा सा और रहना है।

लौट कर घर पर आया। अपने जीवन के निज अनुभव पर दृष्टि गई जो अनुभव हुआ, वह कहता हूं और मौज अधीन कह रहा हूं, कि भागवत भी

सत्य है। बात यह, कि किसी को कोई समझाने वाला नहीं मिला और समझने वाले भी नहीं हैं। वर्तमान वर्णन शैली इस युग की बुद्धि के अनुसार न होने के कारण भ्रम होता है।

बाहर के प्रकाश का एक बड़ा लोक है जिस प्रकार ऊपर के तारा मण्डल आदि हैं ऐसे ही वह भी एक महान लोक है। यद्यपि वो हम को बाहर के नेत्रों से दृष्टि नहीं आता है। किन्तु मैं अपनी आन्तरिक दृष्टि से उसे देखता रहता हूं।

ऊपर अनन्त आकाश हैं इससे तो किसी को इन्कार नहीं हो सकता है। विज्ञान सिद्ध करता है कि ऐसे महान सूर्य हैं जिनके प्रकाश को यहां तक आने में वर्षों लगते हैं, यदि शास्त्रों और संतों की बाणी से सहमत नहीं हो तो विज्ञान से तो इन्कार नहीं हो सकता है। उनकी खोज ऐसा सिद्ध करती है।

इस महान लोकान्तर ब्रह्मलोक मे धारें निकल निकल कर इस समस्त रचना को बनाती, बिगाड़ती और स्थित रखती हैं। इस ब्रह्मलोक की रेडियेशन माया है और उस माया की रेडियेशन से यह तीन शक्तियां उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक लोक, लोकान्तर

आदि जो इस महान प्रकाश की रेडियेशन से बनते हैं, अपने अन्तर भिन्न २ ब्रह्मा, विष्णु और महेश रखता है। अनेक विष्णु, अनेक ब्रह्मा हैं। यह शक्तियां हैं, जो सृष्टी को बनाती, बिगाढ़ती और स्थित रखती हैं। इस ब्रह्म की शक्ति प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्तियां भी प्रत्येक प्राणी में विद्यमान हैं।

बछड़े ग्वाल बाल और गोपियां मानव की इन्द्रियां, मन की धारें और वृत्तियां हैं। यह मन अनेक प्रकार की रचना करता रहता है। गुरु ज्ञान के बिना यह अपने रूप को न जानता हुआ अपने आद से परिचित नहीं है।

दाता दयाल ने विज्ञान कृष्णायन एक पुस्तक लिखी थी। इसमें यह रहस्य भली प्रकार खोला हुआ है।

जैसे इस भागवत आदि के रहस्य से प्राणी अनभिज्ञ रहते हुए नाना प्रकार के भ्रम, संशय, शंका और सन्देह पैदा करते हैं वैसे ही सन्त मत की बाणी पर अनेक सज्जन टीका टिप्पणी करते हैं।

किसी को क्या कहूं मैं स्वयं दोषदर्शी तो नहीं रहा किन्तु जो कुछ सन्तों ने कहा अथवा वाणियों में वर्णन कर गये उसको अपनी आंखों से देखने का इच्छुक रहा हूं और अब भी हूं। मैं यह देखना चाहता था कि यह जो कुछ शास्त्र और सन्त कह गये वह है क्या ? यह भाव टीका-टिप्पणी के विचार से नहीं बल्कि इस समय तक भी मेरे अन्तर एक कुरीद विद्यमान है। सम्भवतः वह उस समय समाप्त हो जब मैं समाप्त हो जाऊं अर्थात मेरा जीवन ही न रहेगा।

हस्ती है जब तक मेरी, ख्वाह किसी भी तबके में है।
उत्थान होता रहता है मेरा, यह मेरा ज़ाती अनुभव है।
कभी जाग्रत. कभी स्वप्न, कभो सुषुप्ति, कभी तुरिया पद।
कभी तुरियातीत आया, सत पद, अलख, अगम व अनाम पद
मगर सब जगह से अभी, उत्थान होता रहता है मेरा।
इसलिये दोस्तो यह सफरे जिन्दगी खत्म नहीं होता मेरा।

———卐———

कभी सोचा करता था कि मैं किसी पद को पाकर कुछ बन जाऊंगा। बस यही बना कि अभी तक :—

ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, चलती है ज़िंदगी मेरी।
सफ़र ख़तम होने पर नहीं आता, चलती रहती है
जिन्दगी मेरी ॥

भरम बेशक चले गये मेरे, खोज का भी अन्जाम हुआ।
गो हालते बेहालती आई, पर सफ़र नहीं है खतम हुआ॥
यह भी ख़बर क्या ? सफ़र ख़त्म होगा भी, या नहीं होगा।
दौड़ दौड़ कर ख़ूब देखा, आख़िर को यह बस समझ आया।
मौज ही है और मौज ही मौज, मौज ही है और मौज।
मौज की रचना, मौज़ की चीज़, मौज की ज़िंदगी है
इक मौज ॥

राज़ी बरंज़ा होकर के रहना ही, है बस मौज की मौज।
राधास्वामी मत में आकर यही समझा, मौज ही मौज।।

फिर भी जो सज्जन मेरी भांति इस मार्ग के खोजी हैं उनके लिये अपना अनुभव वर्णन किये जा रहा हूं। सम्भवतः इनके किसी काम आये। काम यही आयेगा कि उनकी अपनी खोज के क्रम में सहायता मिलेगी और एक प्रकार की शान्ति प्राप्त होगी। चरण नं० 2-3 में मैंने बाणी के आधार पर दो स्थानों अथवा दो सोपानों का उल्लेख किया है। आज तीसरे स्थान का उल्लेख करता हूं।

शब्द स्थान तीसरा

अब चलो तीसरा पर्दा खोल। सुन्न मण्डल का सुन
लिया बोल।
दसवां द्वार तेज प्रकाश। छोड़े नीचे गगन आकाश ॥

पांच ज्ञानेन्द्रियां और मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार यह नौ दरवाज़े हैं। हमारे जीवन का प्राकट्य इनके कारण होता है और इस शरीर द्वारा यह जीवन खेल कर रहा है। जब इस खेल से जीवन उकता जाता है तो पहले और दूसरे स्थान से घंटा शंख, ज्योतिस्वरूप, ओ३म् बादल की गरज और लाल प्रकाश को छोड़ कर अपने इस स्थान पर जाता है, जहां इसका मानसिक जीवन शुद्ध पवित्र और निर्मल हो जाता है। स्मरण रहे कोई व्यक्ति जब तक धन, स्त्री और सम्पत्ति की वासना रखता है अथवा मान, बड़ाई, द्वेष, ईर्ष्या, चाहे वे किसी प्रकार के हों, विद्यमान हैं, और जब तक प्राणी का मन शुद्ध, पवित्र तथा वासना रहित नहीं हो जाता है, इस मण्डल के स्थान को प्राप्त नहीं कर सकता। यह जीवन के अनुभव के आधार पर कह रहा हूं।

मैंने इसीलिये इस कारण निज अनुभव के आधार पर जन साधारण के लिये "मनुष्य बनो" की पुकार की। संत कबीर भी यही कह गये।

मानव बन कर न मुआ, मरा तो डांगर डोर।
एकहूं जीव ठौर न लगा, लगा तो हाथी घोड़ ॥

मैंने "मनुष्य बनो" की पुकार राजनैतिक विचार से नहीं की बल्कि मोक्ष, शान्ति, अध्यात्म और वास्तविकता के विचार से की है। यह मेरा अनुभव है और मैं चकित होता हूं कि जो यह आत्मिक अथवा यौगिक लाईन की शिक्षा देने के ठेकेदार हैं क्या इन के क्षेत्रों, मठों और सभाओं में द्वेष ईर्ष्या, मतभेद और पक्षपात विद्यमान नहीं है। चाहे हिन्दु हो, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैनी अथवा बौद्ध इन में मतभेद मत्सर और पक्षपात है। इसलिये निर्भय होकर कह रहा हूं।

कोई न जाये इस मन पार। जब तक न हो शुद्ध आचार ॥
द्वेष. राग, नफ़रत बुगज़ कीना। इन त्यागे विन न हो कोई मन पार ॥
शायद इसीलिये हूं तन में भाई। साफ़-साफ़ कह जाऊं हेलामार ॥

यह लिख रहा था कि लेखनी छुट गई। अचेतनता आ गई।

प्रकाश चमका, मन छूटा, देह को भूल गया।
शब्द गूंजा इक अजीब देश, मैं चला गया॥
काफ़ी मुद्दत आलमे प्रकाश से वापिस आया हूं मैं।
सोचता हूं फिर खेल में, क्यों आया हूं मैं॥

अब चेतनता है। क्यों ऐसी दशा हुई? आह! लिख रहा था कि मनुष्य पहले बनो। उस समय विचार आया था। अरे मन, तू अभी ऐसा सोच रहा है। यह दोष तुम में स्वयं है। मौज ने जो कुछ कर रक्खा है वह ठीक है। मौज जो करती है वह ठीक ही करती है। तूने "मनुष्य बनो" की पुकार की, धर्मों और पन्थों पर टीका टिप्पणी करता है। यही संस्कार है जो तुमको इतना साधन करने के पश्चात भी नीचे लाता रहता है। बस इसी विचार से अचेतनता आ गई और :-

छोडकर ज्ञान और कर्म इन्द्रियां, मन चित अंहकार को।
मैं चढ़ गया ऊंचा, देखा जाय प्रकाश और शब्द के भण्डार को॥

इस समय हाथ कांपता है। मस्ती से सिर झूम रहा है। आंखे मतवाली हो रही हैं। यह

क्या है ?

अब चली तीसरा पर्दा खोल ।
सुन्न मण्डल का सुन लिया बोल ॥
दसवां द्वार तेज प्रकाश ।
छोड़े नीचे गगन आकाश ॥
मान सरोवर किया स्नान ।
हंस मण्डली जाय समान ॥

हंस दूध और पानी छान लेता है । मेरा अनुभव है पानी मन के विचार हैं और दूध प्रकाश रूपी चद्रमा की भांति है :-

सुन्न शिखर चढ़ी सूरत घूम । किंगरी सारंगी डाली घूम ॥

कोई समय था जब मैं इस सुन्न आदि में जाने के लिये मन के साथ ज़ूझा करता था । उस समय यह मन अपने संस्कारों के प्रभाव से इच्छा और वासनाओं से अपने अन्तर प्रकाश और शब्द को बनाया करता था । अपने अंतर पानी का निर्मल मान सरोवर बना लेता था । उसमें मछलियां हंस रूप समझ कर बनाता और प्रसन्न होता था । अपने ही विचार से अंधकार बन जाता था । क्योंकि विचार मिला हुआ था । अब चूंकि आशा रहित इच्छा रहित और समस्त भाव विचारों को छोड़कर

जाता रहता हूं तो वह दृश्य नहीं वल्कि :-

शब्द प्रकाश गूंजत. मस्ती के आलम में रहता हूं।
मौज के आधीन होकर. तन मन में आता हूं॥

यह किंगरी और सारंगी क्या है ? मेरा मन निसंकल्प होकर अपने समस्त संस्कारों और वासनाओं को छोड़कर स्वयं अपने अंतर प्रकाश रूप होता है। है तो वह पहले ही ऐसा। पहली सोपानों में इसी के भावों विचारों के कारण स्थूल और सूक्ष्म पदार्थ के अन्तर्गत घंटा, शंख मृदंग आदि सुनता था। वही अब अपने ही अस्तित्व की गति से किंगरी और सारंगी की ध्वनि देने लगा। क्योंकि एक तो मन ही है जो शुद्ध पवित्र निर्मल है दूसरी सुरत की धार उस पर यात्रा करती है और चलती है। इसलिए इसको सारंगी की ध्वनि से समानता दी गई है।

मेरा निज अनुभव यह है कि जब तक मानव के भीतर वासनायें विद्यमान हैं और वह इन लोकों की सैर के लिये साधन करता है, उसको मन के साथ जूजना पड़ता है। और उत्कट लगन के कारण उसका मन जिस-जिस प्रकार के विचार इस परमार्थ

अथवा योग के पड़े हुये हैं, वही रूप धारण कर सम्मुख आते हैं। मैं किसी समय बसरा बग़दाद में अपने अन्तर मानसरोवर देखता, उसमें मछलियों के दर्शन करता, चन्द्रमा का प्रकाश होता था और बहुधा घोर अन्धकार दृष्टिगोचर हुआ करता था।

फिर वह समय भी आया जब मैं दाता दयाल के असीम प्रेम में उनका चित्र बनाकर मगन होता तो विसमाधि (शारीरिक और मानसिक अचेतनता,) हो जाती थी। वहां मन अमन होकर निःसंकल्प अवस्था छा जाती थी, वह महासुन्न की अवस्था थी। किन्तु आज इन दोनों प्रकार की अवस्थाओं से पार हो गया हूं क्यों कि सतगुरू मिल गया। वह सतगुरु कौन है ? शब्द और प्रकाश है। विवेक और ज्ञान है। वह कैसे प्राप्त हुआ ? सतसंगियों द्वारा, साधु सेवा से, साधु सेवा किसने कराई ? आह ! दाता दयाल ने।

ऐ साधको, अभ्यासियो ! सम्भव है मैं ग़लती पर हूं मुझे कोई खेद नहीं हैं। किन्तु मेरा निज अनुभव जो दाता दयाल महर्षि जी की पवित्र, पुनीत विभूति ने प्रदान किया है वह विवश करता है कि

मैं मानूं कि जो कुछ मैं कह रहा हूं वह सत्य है। यह आन्तरिक गुरुस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति के अपने ही भाव विचार और, विश्वास का फल केवल त्रिकुटी तक ही सीमित है। सतगुरु की प्राप्ति दसवें द्वार में होती है। हज़ूर रायबहादुर सालिगराम जी की प्रेम वाणी मैंने पढ़ी है उसमें ऐसा ही उल्लेख है। हज़ूर सांवलेशाह भी यही कहा करते थे कि सूर्य, चंद्रमा और तारागण को लांघों तो आगे सतगुरु खड़ा है। वह सतगुरु फ़कीरचन्द अथवा कोई अन्य पुरुष नहीं होता है। ऐ भोले-भाले सतसंगियों ! तुमको ज्ञान नहीं, समझ नहीं, कोई समझाने वाला मिला नहीं। वह सतगुरु शब्द और प्रकाश है।

वह तुम्हारा अपना ही आत्मा है। बाहर का पूर्ण पुरुष कभी तुमको धोखा नहीं देगा। किन्तु यह शब्द उनके लिए है जो वास्तविकता और सत्यता के इच्छुक हैं। धन, धाम बड़ाई और मान प्रतिष्ठा के चाहने वालों के लिए यह ठीक है कि गुरु, राम अथवा अपने इष्ट को मानते हुए चलो। यह तुमको मानसिक सहारा और सांसारिक उन्नति देता रहेगा। इससे तुम्हें और तुम्हारे गुरुओं को मानसिक और

सांसारिक लाभ और आनन्द मिलते रहेंगे और इस शरीर और मन के आवागवमन में दोनों फिरते रहोगे।

यह लेख मेरा सच्चे साधकों के लिये है।

सुन सुन सुरत हो गई सार। पहुंची जाय त्रिवेणी पार॥

त्रिवेनी, गंगा यमुना और सरस्वती के संगम् को कहते हैं। घट की त्रिवेनी क्या है? अपने समस्त मानसिक भाव जो अच्छे अथवा बुरे थे गंगा और यमुना और पवित्रता के विचार सब के सब समाप्त होकर एक केवल शुद्ध पवित्र निर्मल मन के रूप में बदल गये।

महासुन्न का नाका लीन्ह । गुप्त भेद जाय लीन्हा चीन्ह॥
अन्धघोर जहाँ भारी फेर। सत्तर पालंग जा का घेर॥

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है कि प्रेम के भाव में मन जब एकाग्र होता है वह अपनी सब चेतनाओं को भूल जाता है। यदि शब्द और प्रकाश खुल गया तो इस चक्र से सुरत निकल गई अन्यथा नहीं।

प्रशन:-सत्तर पालंग का फेर क्या है?

उत्तर:-माप तो मैंने की नहीं, न इस समय तक कर सका। हां! ऐसे कर सका हूं जिस प्रकार वर्तमान

वैज्ञानिक तारागण की दूरी जो इस पृथ्वी से है इसको बताते हैं ।

वह कैसे ? ध्यान पूर्वक सुनो और विचार करो। वर्तमान विज्ञान ने सूर्य, चन्द्र अथवा पृथ्वी का घेर मालूम किया है या नहीं। इसी प्रकार यह ब्रह्मलोक का मण्डल सुन्न, महासुन्न आदि एक महान लोक है। स्वामी जी कहते हैं कि वह महासुन्न का घेरा सत्तर पालंग है। पालंग एक कोस का पैमाना है। योजन तो चार कोस का होता है। पालंग का पता नहीं है। उन्होंने कैसे सत्तर पालंग कहा। मैं नहीं जानता हूं। मैं इतना जानता हूं कि यह ब्रह्मलोक ऐसे ही है जैसे सूर्य एक देशीय होता हुआ सर्व देशीय है। ऐसे ही वह ब्रह्म एक देशीय होता हुआ सर्व देशीय है। जो वस्तु इस ब्रह्मलोक में अर्थात इस प्रकाश और शब्द के लोकों में रहती हुई उसकी सैर करती है, वह सुरत है। वह सुरत इस देश की अवस्था का अनुभव करती है। किन्तु करती इसी प्रकार है जिस प्रकार हम पृथ्वी पर इसी पृथ्वी के जलवायु से अपना शरीर रखते हुए उसकी सैर कर सकते हैं। इसी प्रकार उस लोक में जो कि (क्षर) शूक्ष्म तत्व का बना हुआ है।

वहां के तत्व का बना हुआ हमारा शरीर वहां होता है तब हम उस लोक की सैर कर सकते हैं और वहां के राग और रागिनी अथवा प्रकाश आदि को देख सकते है।

वानी चार गुप्त जहां उठती।
सुरत रागिनी नई नई सुनती।
झंकारें अद्‌भुत कहा वरनूं।
सुन सुन ध्वनि मन में अति हरषूं॥

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी खोज व्यक्त करने का अधिकार है। यह मण्डल ब्रह्म लोक का है। अर्थात् अक्षर सूक्ष्म तत्व प्रकाश स्वरूप का एक महान देश है। इसके अन्तर से पांच शक्तियां ज्ञान इन्द्रियां प्रगट होती रहती हैं। इसका ज्ञान मानव को योग साधन से हो सकता है इसी प्रकार ऊपर के ब्रह्म लोक में से पांच प्रकार की धारें निकल कर इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। जो इस ब्रह्मण्डी मन में कार्य करती हैं, और त्रिकुटी में आकर अपना कार्य पूर्ण करती हैं। वही ज्ञान इन्द्रियां लौटकर इस स्थान में लय हो जाती हैं। और वाहरी जगत में प्रलय के समय यह सब कुछ इस लोक में समा जाता है।

पांच अन्ड रचना तहां कीन्ही। ब्रह्म पांच तामें हुए लीनी ॥
अण्डन शोभा वरनूं कैसी। सब्ज सेत कोई पीत बरन की ॥

यह एक ब्रह्म के लोक का वृत्तान्त है। ऐसे ही अनेक वाहरी लोक अर्थात् बड़े २ सूर्य विद्यमान हैं। जिनका उल्लेख कोई क्या करे।

क्या यह झूठ है? कदापि नहीं। अनन्त आकाश को देखो कितने तारागण और लोक हैं, असंख्य हैं। सम्भव है आगे चल कर विज्ञान और कितनी उन्नति करेगा।

लख लख अरब तासु परमाना।
यह अंडा अति तुच्छ दिखाना ॥

अर्थात् यह हमारा सूर्य लोक और जो वस्तु उससे परे है, त्रिकुटी जो इसके आधार से ब्रह्मलोक है जिससे यह समस्त रचना होती है, अनुमान करो कितना बड़ा लोक होगा।

या में ब्रह्म व्यापक जोई। ताकी गति कहो कितनी होई ॥

ज्ञानी जन इस ब्रह्म के थोड़े से ज्ञान को समझ कर अहमब्रह्म की पुकार करते हैं। वह कहां तक सही हैं? स्वयं अनुमान लगाओ।

ता का ज्ञान पाय यह ज्ञानी। फूले मन में होई अभिमानी ॥
मेंढक सी गति इनकी जानी। कूप समुद्र जान मगनानी ॥

कहा करें यह हैं लाचार। वह तो देश न देखा सार॥
बिन देखे कैसे परतीत। उन नहीं जानी अचरज रीति॥

इसी अपनी दृष्टि को इस ब्रह्म तक काल्पनिक रूप को मान कर स्वयं ब्रह्म बन कर फूलता है। और अपने ही लाये हुए विचार में ब्रह्म को ही सब कुछ समझता है।

इसी ब्रह्म को जान अपार। भूले मारग करें बिचार॥
अब इनको कैसे समझाऊं। वह नहीं मानें चुप रहा हूं॥
राधास्वामी कही समुझाये। तीनों पर्दे दिये लखाय॥

आज फिर दूसरे दिन डाक्टर सरदारीलाल के पास दवा लेने को गया। उन से वार्तालाप हुआ। वे कहने लगे पण्डित जी, मैं डाक्टर हूं। मेरा वर्तमान ज्ञान इस धार्मिक जगत को बातों पर विश्वास नहीं लाता इसके अतिरिक्त मैं क्या कहूं कि बुद्धि काम नहीं करती है।

फ़कीर :-वह कैसे।

डाक्टर :-प्राणी का वीर्य एकबार भोग-विलास के समय इतना निकलता है कि उसके भीतर जो कीटाणु होते हैं वे लाखों की संख्या में होते हैं। उन में केवल एक कीटाणु यदि वह स्त्री के गर्भ में समा जाय तो बच्चा बनता है शेष सब नष्ट हो जाते हैं।

यदि आत्मा का जन्म लेना माना जाये तो बुद्धि चकित होती है कि असंख्य आत्मायें हैं। कैसे आता है ? कैसे जाता है। यह क्या खेल है ? डाक्टर साहब ने धार्मिक जगत पर आश्चर्य प्रगट किया।

बात इनकी सच्ची है। मैं घर आया और सोचने लगा। सोचते २ समाधि में चला गया। अधिक समय पश्चात् चेतनता आई और यह लिखता हूं।

भूल गया वहां देह गेह मन संसारा।
शब्द प्रकाश का था वह मंडल सारा॥
आनन्द भरी मस्ती की थी वह बस्ती।
देश सुहाना जिसका वार न पारा॥
क्या है क्यों है, किसने बनाया।
दुनियाँ वालो मैं नहीं पा सकता पारा॥
क्या जवाब है डाक्टर के सवाल का।
वहां सवालो जवाब का नहीं गुज़ारा॥
रचना राम रचाई आप सुभाविक।
जाने आप ही वह जानन हारा॥
हम भी चले थे खोज में उसकी।

खोज खोज अब खोज विसारा ॥
गुरू की दया साध की संगत ।
मिला खोज से अब छुटकारा ॥

किन्तु बुद्धिमान सज्जन प्रश्न करते रहते हैं। मैं भी करता रहा हूं । उनको इतना उत्तर देता हूं कि :-

यह प्रकाश और शब्द का जो है भंडारा।
उससे बनता रहता है संसारा ॥
यही है व्रह्म कर्ता और करने हारा ।
उसकी लीला आप ही जाने अक्ल से मैं हारा ॥
जिसने उसकी मौज के गुर को समझा ।
वह औरों का कर गया जगत में सुधारा ॥

जिस प्रकार डाक्टरों ने मानवीय प्रकृति के रोगों को समझकर और औषधियों के गुण को समझकर मानव जाति के रोगों को दूर करने में सहायता की, जिस प्रकार एन्जीनियरों अथवा अन्य आविष्कारकों ने रहस्य को समझकर मानव जाति के लिये बड़े २ काम किये जिनसे उनको सुख चैन मिला, जिस प्रकार साधुओं ने मन की चाल को समझकर संकल्प शक्ति का उचित उपयोग जन साधारण को बतलाया और

"शुभ संकल्पम् अस्तु" की शिक्षा दी और जिस प्रकार संतों और महापुरुषों ने इस तापमान जगत को मन से ऊपर जाकर अपने अन्तर आनन्द और शांति प्राप्त करने का मार्ग बतलाया। इसीलिये इस संसार में इस ईश्वर परमेश्वर और ब्रह्म आदि से बड़ा (दर्जा) पदवी इनकी है जो इस प्रकृति के रहस्य के पूर्ण ज्ञाता हैं और जीवों को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शान्ति देते हैं।

हमने राम के मिलन की खोज करी, पर अन्त न पाया।
जितना पाया ऐ मित्रो, साफ साफ बतलाया ॥
जीवन के अनुभव के पीछे, यह कह कर है गाया।
इन्सान बनो, काम आओ इन्सान के, यह समझ में आया ॥
उसकी खोज हम कर-कर थाके वह बे अन्त रहाया।
सुरत शब्द भण्डार है बेशक, आप मिटा तब पाया ॥
गुरु दयाल ने दया करी थी, वहमी को था चरण लगाया।
उनका अहसान सर पर भारी, गुरु ऋण ने यह लेख लिखाया ॥

नोट:—डाक्टर साहिब के प्रश्न का उत्तर आगामी चरण (किश्त) में निज अनुभव के आधार पर प्रमाण सहित दूंगा।

[illegible] दयाल जी की मौज

पञ्चम चरण

तेरी मौज में रह कर मौज में रहता।
जो है मौज तेरी वही में हूं करता ॥
न बस अपने कुछ है तू है मेरा स्वामी।
झुकाऊं मैं सर को चरण में दवामी ॥
तू ही जाने सब कुछ तेरा ही खेला।
बनाया है मुझ को कराने यह खेला ॥

डाक्टर सरदारी लाल का प्रश्न है कि मानव के वीर्य में इतने कीटाणु होते हैं कि एक बार के डिस्चार्ज़ (discharge) से लाखों बच्चे उत्पन्न हो सकते हैं। किन्तु केवल एक ही कीटाणु यदि स्त्री के गर्भ में चला जाये तो बच्चा हो जाता है शेष सब नष्ट हो जाते हैं। उन्होंने पूछा कि आत्मा क्या है ? कैसे अस्तित्व में आता है आदि आदि।

उनका भाव था कि यह समस्त खेल प्रकृति का है। यह धार्मिक और पान्थिक जगत के विचार समझ में नहीं आते हैं। बुद्धि चकित होती है।

इस वर्तमान युग में इस वैज्ञानिक विद्या के साथ मानवीय जीवन की शान्ति के लिये ही मौज ने सन्तमत (राधास्वामीमत) को प्रगट किया है। मांग

और पूर्ति का कार्य ही प्रकृति का नियम है। जहां मांग है वहां ही पूर्ति होती है।

मेरे चरण नं० २, ३ और ४ को ध्यान से पढ़ो। इस स्थूल रचना का रचैता यह ज्योतिस्वरूप है। इसी से चार प्रकार की खान (रचना) बनस्पति, चर, अचर, पशु और प्राणी बनते रहते हैं और मरते रहते हैं। और इस क्रम में कोई भी जीव जन्तु सुखो नहीं है। प्रसन्नता-अप्रसन्नता, चिन्ता-अचिन्ता, भय और निर्भयपना यह समस्त जीव जन्तु के भाग्य में आते हैं। यह क्या है ? काल की रचना अथवा इस महान प्रकाश अथवा लोक लोकान्तर की रेडिएशन का खेल है।

किन्तु यह सोचो कि यह रचना कौन करता है ! प्रकाश और ताप का स्वाभाविक गुण है। श्रावण मास के सतसंग में मैंने इस पर पूरा प्रकाश डाला था वह इस पत्रिका में निकल चुका है।

ऊपर के लोकों से धारें और किरणें आती रहती हैं और उनके अंतर्गत यह रचना होती रहती है। सब से ऊंचा लोक जो इस रचना को करता है वह सन्तमत के अनुसार भंवरगुफा, हिन्दुओं के शब्दों में

सोहं पुरुष है, जो एक से अनेक माना गया है ।

प्रत्येक लोक में जीवन है । प्रत्येक जीवन इसी प्रकार से बना है और एक दूसरे से भिन्न हैं । यह यों देखो ! वीर्य के कीटाणु और प्रकार के हैं, रक्त के और । शौच आदि के भिन्न होते हैं । यह हमारे शरीर की दशा है । इसी प्रकार प्रत्येक लोक की रचना भिन्न है । ऊपर के लोकों की रचना गंधर्व आदि मानव से और भी भिन्न है । यह समस्त रचना इस प्रकाश के भण्डार से है । इस प्रकाश के भण्डार की शक्ति ने रेडियेशन द्वारा समस्त सृष्टि का खेल रचा हुआ है । इस संसार में मानव सबसे श्रेष्ठ और पूर्ण नमूना है जिसमें सब कुछ ऊपर के लोकों के के प्रभाव विद्यमान हैं ।

अब जब काल ने अर्थात् इस प्रकृति ने मानव को बना दिया अथवा विकाश के क्रम में वह प्रकाश जो सोहं देश से आया था स्वयं मानवीय रूप में हो गया, तो वह फिर भी सुखी नहीं है । है तो बताओ ? यह त्रिगुणात्मिक जगत है, आत्मा, मन और शरीर की मिश्रित अवस्था में प्राणी विद्यमान है किन्तु वह शान्त नहीं है । जब मानव मनुष्य होकर अर्थात्

समस्त प्रकार के बोधभान का अनुभव करने के पश्चात देखता है कि वह सुखी नहीं है तब उसके अन्तर एक चौथी वस्तु उत्पन्न होती है, जिसका नाम सुरत है।

मेरे अनुभव में सुरत का कोई सम्बन्ध आत्मा, मन और शरीर से नहीं है। यह साक्षी है इन सब की, किन्तु इसका अनुभव अनेक वर्षों के पश्चात् हुआ। सम्भव है कि पहले इसी प्रकार मुझमें अर्थात् मेरे शरीर, मन और आत्मा में रहती रही हो, जिस प्रकार दूध में घी रहता है।

इस त्रिगुणात्मिक जगत के संघर्ष से बचने के लिये जो मैंने भाग दौड़ की, साधन किया, तब इसका ज्ञान हुआ।

वह ज्ञान क्या है और कैसे हुआ ?

प्रकाश और शब्द का एक मंडल आकाश पर अनन्त आकाश में है। उसकी रेडियेशन से अनेक लोक लोकांतर तारा मंडल ग्रह आदि बनते रहते हैं और एक प्रकार की संसनी प्रत्येक प्राणी में उत्पन्न होती रहती है। कहीं वह शारीरिक, मानसिक और कहीं

आत्मिक है। इसका अनुभव प्राणी करता है। इस प्रकाश और शब्द के अन्तर एक चौथी अवस्था है जो मेरे अन्तर प्रगट हुई है। वह जब चाहती है शरीर, मन और आत्मा के बोधभानों का त्याग करके अपने आप में ठहर जाती है। मैं यदि उसको सुरत कह लूं तो अनुचित नहीं है। वह इस शरीर, मन और आत्मा के बोधभानों की साक्षी रहती है। किन्तु अभी तक इनसे स्थाई रूप में पृथक नहीं हुई है। इसलिये मैं ऐसा प्रतीत करता हूं कि यह मेरे अन्तर जो चौथी अवस्था है, सुरत है। इसका भी कोई भन्डार है। वह क्या है ! मैं अभी तक नहीं जान सका। प्रयत्न करता रहता हूं। शरीर के स्थाई रूप में त्यागने के पश्चात् मेरी क्या दशा होगी। मैं नहीं जान सकता हूं। न बता सकता हूं। थोड़ा बहुत जो जान सका हूं वह अगले चरण में वर्णन करूंगा और यह ज्ञान कैसे हुआ !

मैं अपने मन से इस संसार के बनाने वाले को श्रद्धा और विश्वास से मानता था। मेरे ही विश्वास और विचार ने मुझको निश्चय कराया कि वह दाता दयाल महर्षि जी के रूप में है। मैंने अपने मन से

पूर्ण प्रेम और भक्ति से उस मालिक को उस रूप में पूजा और प्रेम किया। उस ज़ात पाक ने मेरे अज्ञान और भ्रम को जिसको इस समय मैं अज्ञान और भ्रम समझता हूं मिटाने के लिए आचार्य पदवी दी। सतसंगियों ने मेरी भांति जब मुझसे अथवा मेरे रूप से प्रेम किया तो उनके अनुभव ने मेरी आंखें खोल दीं और इस अनुभव से मैं सन् १९१९ से विवश हो गया कि वाह्य दाता दयाल को ज्ञान का अवतार मानूं। और अपने अंतर शब्द और प्रकाश को इष्ट बनाकर उसको मालिक मानूं। इस यात्रा के करते करते मुझे विश्वास हुआ कि शब्द और प्रकाश मेरे अधीन है। मैं शब्द और प्रकाश के अधीन नहीं हूं। क्योंकि जैसा चाहूं वैसा शब्द प्रकाश अपने अंतर भिन्न केन्द्रों पर उत्पन्न कर सकता हूं। इसलिये अब मैं अपने इस भंडार की ओर जाता रहता हूं जहां से मेरी सुरत निकली है। अभी पूर्ण अनुभव पूर्ण मिलाप नहीं कर सका यद्यपि कभी कभी उसमें जाकर मेरी सुरत अपने आप को भूल जाती है। फिर न मैं रहता हूं और न संसार ही दृष्टि में आता है।

मौज अनुसार चूंकि मेरी इच्छा थी कि मैं अपने

जीवन का अनुभव बता जाऊंगा। इसलिये कार्य किया गुरु ऋण समझ लो, मौज समझ लो, जो जी चाहे समझो मैं कुछ नहीं कह सकता हूं। मुझे कोई निज स्वार्थ न है न था। आगे का पता नहीं। आओ अब इस सोहं पुरुष के सम्बन्ध में भी सुन लो, जो मैंने समझा है।

शब्द स्थान चौथा

सुरत सम्वाद

अब चौथे की करी तयारी। जलरी सुरत तू शब्द सम्हारी॥
नाल हंसिनी घाटा फांदा। रुकमिन नाल सुरत को साधा॥
पांजी निरखी जहां गम्भीर। सुरत निरत दोउ धारी धीर॥
दायें रचे दीप परचण्ड। बांये रचाये बहुतक खण्ड॥
मोती सहल और रतन अटारी। हीरे लाल जड़े जहां भारी॥
गुप्त भेद यह दिया जनाई। जानेंगे कोई संत सिपाई॥
भंवर गुफा का परबत निरखा। सोहं शब्द जाय जहां परखा।
धुन मुरली जहां उठत करारी। सेत सूर सूरत निरखारी॥
तेजपुंज वह देश भला री। धुन अपार तहां होत सदा री॥
हंस अखाड़ा लीला चौक। भक्त मण्डली खेलें थोक॥
लोक अनन्त भक्त जहां बसें। नाम अधार अमी रस रसें॥
राधास्वामी यह भी गाई। चौथा परदा लीन्हा जाई॥

यदि यह कह दिया जाय कि यह ऊपर के स्थान नहीं हैं केवल प्राणी ने अपने अनुभव से माने हुए हैं तो ग़लत है। यद्यपि माने प्राणी ने स्वयं हैं किन्तु यदि वह न माने न जाने तो यह नहीं कि उनका अस्तित्व नहीं है। चमगादड़ को यदि सूर्य दृष्टिगोचर नहीं होता तो यह तात्पर्य नहीं कि सूर्य नहीं है। इसके अतिरिक्त मानव स्वयं बनाया गया है। उसका शरीर, मन और आत्मा आदि इस बाहरी प्रकृति के तत्वों से बना हुआ है। संतमत में इसी कारण वेदांत का खण्डन है। वेदान्त इतना ही है कि यह समस्त रचना इस प्रकाश रूपी महान लोक से बनी हुई है और एक दृष्टि से वह प्रकाश (ब्रह्म) स्वयं ही विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर है। बस यह वेदान्त एक बुद्धिमय खोज की बुद्धिमय शान्ति देता है। यहां तक कि इसका अस्तित्व सत्य है। जब तक बुद्धि स्वच्छ और निर्मल नहीं होती वेदान्त की शिक्षा शान्ति नहीं दे सकती। और बुद्धि के स्वच्छ होने पर एक प्रकार की शान्ति मिल जाये तो शारीरिक प्रकृति के परिवर्तन से इस बुद्धि में भी परिवर्तन आता रहता है। फिर वह बुद्धिमय शान्ति जो

वेदान्त से प्राप्त हुई थी नहीं रहती है। संतमत में इसलिए शरीर, मन और आत्मा से जब तक प्राणी निकल नहीं जाता यह शान्ति सुख अचिंतपन अभय-पन पूर्णरूपेण मिल ही नहीं सकता है। इसीलिये संतमत में साधन और सत्संग दोनों अनिवार्य हैं।

ज़ब तक सुरत नहीं निकल जाती, तन. मन, के खोल से।
कोई नहीं वच सकता है, हरगिज़ दुख-सुख के माहौल से ॥
इसलिये यह सुरत शब्द योग, और पाच इसकी मन्जिलें।
यह हैं फ़क़त इस दुनियाँ के खेल की सब हालतें ॥

अब इस चौथी सोंपान मञ्जिल में जो स्वामी जी ने उल्लेख किया है उसके वास्तविक भाव को तो वे ही जानते होंगे। मैंने जो कुछ स्वयं अनुभव किया है सो कहता हूं।

सन्त कबीर ने भी इसी स्थान का उल्लेख करते हुए मुरली की ध्वनि और पर्वत का उल्लेख किया है और बताया है।

दो पर्वत के सिंह निहारो। भंवर गुफाते संत पुकारो।
हंसा करते खेल अपारो, तहाँ गुरुअन दरबारा है ॥
सहस अठासी द्वीप रचाये। हीरे पन्ने महल जड़ाये ॥

मुरली बजत अखण्ड सदाये। तहां सोहं झंकारा है ॥
कर नैनों दीदार, महल में प्यारा है ॥

मैंने पर्वत (पहाड़) नहीं देखे। हां! बसरा बगदाद में चूंकि पहाड़ों का विचार मिला हुआ था कभी कभी ऐसा दृश्य आता था। अब निज अनुभव ने सिद्ध किया है कि वहां कारण प्रकृति नि:अक्षर प्रकाश स्वरूप में बेअंत है। ये दो पहाड़ क्या हैं? पौज़ीटिव और नैगेटिव शक्तियां हैं! चूंकि वही शक्तियां नीचे आकर लोकों में कार्य करती हैं और वर्तमान विज्ञान ने उनकी खोज की है। चुम्बक और बिजलो आदि में पौजीटिव और नैगेटिव दोनों शक्तियां हैं। मैं तार विभाग का इन्सपेक्टर और मास्टर भी रहा हूं। इनसे सम्बन्ध रहा है। इसलिये कहता हूं कि:—

प्रत्येक जीव में चाहे वह किसी प्रकार का हो यह दोनों शक्तियां कार्य करती हैं। किन्तु उनका खेल पूरा नहीं होता है। रचना पूर्ण नहीं होती है! जब तीसरी शक्ति सुरत की मिलती है। तब वह वस्तु अथवा जीव पूर्ण और स्वतन्त्र हो जाता है।

यही बात स्वामी जी ने कही है कि जब काल ने रचना रची तो वह अपूर्ण थी। उसने तप किया।

तब सत पुरुष ने तीसरी कला उस को दी । दो कला से काल ने सृष्टि को रचा । किन्तु वह अपूर्ण थी। इसलिये तीसरी कला सत्तलोक से आई। वाणी याद नहीं है ऐसा वर्णन है । वह तीसरी कला सुरत है ।

यों देखो ! तुम्हारी सुरत जब शरीर से ऊपर होती है तब कोई शरीर को काट भी दे तो ज्ञात नहीं होता है ।

किलोरोफार्म के अन्तर्गत डाक्टर आपरेशन कर देते हैं । प्राणी अचेत हो जाता है यद्यपि उसके शरीर में रक्त आदि दौरा करता रहता है । इसी प्रकार इस आवागमन का प्रश्न इन कीटाणुओं में नहीं है ।

यही दशा बच्चे की है जब पेट में होता है पेट में उसको चेतनता नहीं होती है । जब प्राणी को इस साधन और सतसंग से यह ज्ञान हो जाता है कि वह कौन है ? तब इस संसार में रहता हुआ प्राणी जीवन्मुक्त तथा विदेह गति में कहलाता है । फिर उसकी सुरत अपनी ज़ात, सतपद, अलख और अगम में रहती हुई निर्बन्ध हो जाती है। यही दशा मेरी हुई है । शेष आगामी चरणों में ।

परम दयाल जी की मौज

षष्ठम् चरण

लिखने लगा कुछ तो दिल में ख्याल आया,
कौन है तू और क्या कर्म है कमाया।
इस ख्याल मेरी आंख बंद हो गई थी,
जीवन का सारा नक्शा सामने था आया।

अपने अस्तित्व ने अपने अस्तित्व के बनाने वाले आधार की जीवन की खोज की। क्यों ?

अज़ल से जानिबे हस्ती, तलाशे यार में आये।
हवाये गुल से हम, इस वादिये पुरखार में आये॥

फिर क्या वह यार मिला ? यह एक प्रश्न मन में उत्पन्न हुआ।

मिला-मिला यही, कि मैं ही गुम हो रहा हूं।
गुम हो रहा हूं ख़ुद, या ख़ुद को भूल रहा हुं॥
जब होश आती मुझको, तो देखता हूं दुनियां।
धक्के यहां से खाके, फिर ऊंचा जा रहा हूं॥

सुना करता था कि प्राणी को खुदा, ईश्वर मिलता है। किन्तु अनुभव सिद्ध कर रहा है कि मेरा अपना अस्तित्व खत्म होकर कुछ वह हो जाता

है जिसके विषय में मन, चित, बुद्धि और अहंकार न कुछ सोच समझ सकते हैं न देख सकते हैं। शब्द प्रकाश की अधिक सैर की किन्तु समय आता है यह भी समाप्त हो जाते हैं। शेष जो रह जाता है वह क्या है ?

जहां हस्ती है, मगर हस्ती का ज़हूर नहीं।

किन्तु मेरी ऐसी अवस्था होने पर संसार तो फिर भी स्थित है। समस्त कार्य व्यवसाय है। तो फिर क्या मिला ? मिलना क्या था ?

बुलबुला चेतन की, जिन्दगी हर वशर की साबित हुई।
जो मौज थी उस मालिक की, वही हुई और है हो रही॥
भूल भरम बश, अज्ञान वश, इधर उधर दौड़ा फिरा।
कुछ तो था खुद ही भरम में, और कुछ पंथों ने भरमा दिया
सुन-सुन के बातें, और पढ़-पढ़ के पोथियां दोस्तो।
ख्याच था जो कुछ मिला, कह जाऊंगा मेरे प्यारे दोस्तो॥
इसलिये मौज वश, जिन्दगी में है मैंने काम किया।
अपने वश में कुछ नहीं यह मौज दयाल ने करवा लिया॥

मैं इस उपरोक्त परिणाम पर कैसे आया ? निज खोज के क्रम में। उस मालिक के मिलने के सम्बन्ध में, हिन्दू धर्म और शास्त्रों द्वारा विचार मिला हुआ था कि वह पांच कोश के आगे है। संत-

मत वालों ने भी पांच नाम और पांच स्थानों को पार करके आगे बताया हुआ है। वह पांच कोश अथवा पांच स्थान क्या निकले ? उनमें से चार का उल्लेख स्वामी जी की वाणी के आधार पर कर चुका हूं। आज पंचम स्थान का निज अनुभव जो हुआ है वह कहता हूं।

शब्द स्थान पांचवां

पंचम किला तख्त सुलतानी। बादशाह सच्चा निज जानी ॥

यह लेख लिख ही रहा था कि घंटी बजी, बाहर आया। एक पंजाब का रहने वाला ५५ वर्ष का व्यक्ति जो हैदराबाद में नौकरी आदि करता है आ गया। उसने नमस्कार किया और कहने लगा कि पंडित जी, २९ वर्ष का सतसंगी हूं। जीवन बीत गया अभी तक कुछ नहीं मिला। इतनी आयु निरर्थक गई, पश्चाताप करने लगा और कहने लगा कि अंतर में कुछ दृष्टिगोचर नहीं हुआ। न प्रकाश और शब्द ही खुला। व्यास भी काफी जाता रहा। और अन्य अनेक संतों के सतसंग सुने। आप हैदराबाद की

ओर गये थे। आप की सत्यता से मन को प्रसन्नता और शान्ति तो मिली किन्तु वह आन्तरिक दृश्य और इस अभ्यास की सोपानों का कुछ पता नहीं लगा। यह एक ही घटना नहीं वरन् अनेक व्यक्ति ऐसे मेरे पास आते रहते हैं। अन्य स्थानों पर उनको मिलने की भी आज्ञा नहीं है और न ही कोई सच्ची बात ही बताता है। इसलिये मैंने अपने जैसे उन्मत्तों के लिये अपने जीवन में कार्य किया है।

सब महात्माओं ने जनसाधारण को पंथ में जकड़ दिया और उनको अपना और अपने आचार्यों का दास बना दिया। परन्तु सच्ची बात यहीं बताई।

बंधे सब गाढ़े बन्धन आन।
एक तो दुनिया का है चक्र, जिसमें जीव फंसान।।
दूजे डाला चक्र पंथों ने, जीव हुआ हैरान।। बंधे सब०
भूल भरम में यह जग डूबा, बुरी तरह खिलजान।
मैं आया हूं जीव छुड़ावन, सुने न कोई कान।। बंधे सब०

मैं कैसे जीवों को छुड़ा सकता हूं ? यह बताकर कि तुम कौन हो ? मैं स्वयं सोचता हूं कि तू मुक्त हो गया है। हां ! किन्तु किस प्रकार ? मुझे यह ज्ञान हो गया है कि यह मेरा अपना आप एक चेतन का बुलबुला

है। जो इस प्रकृति की मौज और क्षोभ के क्रम में उत्पन्न किया गया है और जब मौज होगी यह समाप्त हो जायेगा। मेरा शरीर, मन आत्मा और सुरत यह सब उस प्रकृति की मौज और क्षोभ से बना है। जैसा-जैसा इसका खेल है या जो-जो गुण, कर्म और स्वभाव उस ने मेरे अन्तर भरे हुए हैं वही मैं विवश होकर कर रहा हूं। केवल इस बात से, इस समझ से, शान्ति है। और मेरी दौड़ धूप समाप्त हो चूकी है। साथ ही चूंकि मुझे यह पता लग गया है कि मेरा शरीर किस प्रकार बना, मन कैसे बना और मेरी आत्मा कैसे बनी है और साथ ही जो मेरी वास्तविक "मैं" है वह कहां से आई ? और कैसे बनाई गई है। इसलिये मैं अपने आप को उन-उन तत्वों से जोड़कर अपने शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और वास्तविक खेलों को घटा वढ़ा सकता हूं।

जैसा ख्याल वैसा हाल। जैसी मति वैसी गति, जैसी करनी वैसी भरनी। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

पिछले चार स्थानों का उल्लेख करते हुए यही सब कुछ स्वामी जी ने कहा है कि प्रथम स्थान से यह स्थूल प्रकृति का समस्त खेल होता है। यदि प्राणी

अपने आपको नियमपूर्वक अपने अन्तर इस ज्योति-स्वरूप सहसर्ाकार से जोड़ ले तो अपने सांसारिक जीवन को अधिक सीमा तक श्रेष्टतर बना सकता है। यदि त्रिकुटी या ओ३म् के स्थान से लगाये तो समझ, बूझ विवेक: ज्ञान, सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति करके अपनी जीवन यात्रा को सुखमय, शान्तिमय, बना सकता है। और तीसरे स्थान सुन्न महासुन्न में जाकर मस्ती आनन्द और सरूर ले सकता है। यदि और ऊंचा जाना चाहे तो सोहं पद में जाकर अपने आप को आनन्दमय बना सकता है।

चूंकि साधन की विधि ज्ञात नहीं है, इसलिये हम इस संसार में दुखी हैं और पश्चाताप करते रहते हैं। यह करनी का मार्ग है और करना प्रत्येक व्यक्ति को अपने आप ही है। और यदि तुम सदैव के लिए एक ऐसे वातावरण में रहना चाहते हो, जहां सुख ही सुख और आनन्द ही आनन्द रहे अथवा स्थाई जीवन प्राप्त हो तो सतपद चलो। इसका पता स्वामी जी इस प्रकार देते हैं।

पंचम क़िला तख़्त सुल्तानी। बादश ह सच्चा निज जानी।

यह युग विद्या, बुद्धि का है। अन्धविश्वासी जो

इस मार्ग में आये वे तो कोरे रहे। समस्त आयु सतसंगों के चक्कर लगाते, धन, सम्पत्ति लुटाते और झूठी आशाओं में मर गये कि अंत समय कोई पुरुष आकर उनको सतपद पहुंचा देगा। और जो वर्तमान बुद्धिमान हैं वे तर्क वितर्क करते हैं और ऐसी बाणी का अनादर करते हैं अथवा अधिकांश ऐसे भी हैं, जो खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ के नियम के अनुयायी है।

मैं स्वयं विश्वासी हूं, किन्तु अपनी निज दृष्टि से जो कुछ इन संतों ने कहा है उसके देखने और समझने का इच्छुक था। सबसे अधिक इच्छा उस मालिक जो 'है' उसके मिलने और दर्शनों की थी। जो कुछ समझा, देखा वह वर्णन करता हूं। दावा कोई नहीं है। यदि वर्तमान महात्माजन इस संसार में निज अनुभव के आधार पर सत्यता से स्पष्ट कह जाते, किन्तु सबने पर्दा रक्खा जो कि किसी सीमा तक आवश्यक भी था। किन्तु अब समय नहीं है।

देखो ! मेरे जीवन की खोज ने सिद्ध किया है, विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि सृष्टि को रचना का आदि प्रकाश और शब्द ही है। हिन्दू शास्त्र

मुसलमान और ईसाई प्रकाश (सावित्री) और शब्द को मानते हैं। यह ऊपर जो अनन्त आकाश है जहां विभिन्न लोक, लोकान्तर, सूर्य, चन्द्र और तारागण विद्यमान हैं, इन सबका आदि प्रकाश ही सिद्ध होता है। यह सबसे बड़ा और ऊंचा लोक जिससे यह समस्त रचना होती है, है वह तख्त सुलतानी है। सच्चा बादशाह (सम्राट) मालिक है। क्या किसी को इन्कार है ? हां ! यह नेत्र नहीं देख सकते हैं। किन्तु इसके देखने की विधि आन्तरिक साधन और अभ्यास है।

इस संसार की सैर हम इस शरीर को रखते हुए पांव, आँख नाक, आदि की सहायता से करते हैं या नहीं करते हैं।

मानसिक रचना की सैर हम अपने शरीर अथवा मन से करते हैं या नहीं। इसी प्रकार इस तख्त सुल्तानी, जो एक महान प्रकाश और शब्द का भण्डार है हम अपने प्रकाश रूपी और शब्द रूपी शरीर से ही कर सकते हैं। इसीलिये स्वामी जी कहते हैं कि—

चली सुरत देखा मैदाना, अजब सैर अदभुत चौगाना ॥

मैं चूंकि अभ्यासी हूं, शरीर और मन के बोध

भानों को भूल सकता हूं और इस ऊपर के लोक की सैर कभी कभी करता रहता हूं। प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। जब कि वह प्रथम धन, स्त्री और सम्पत्ति से सम्वन्धित न रहे ! द्वितीय विचार और सङ्कल्प के बनाये दृश्यों, मूर्तियों और रूपों से सम्बन्धित न रहे।

इस लिये भक्त, उपासक, मानसिक योगी किसी दशा में भी इस स्थान की सैर नहीं कर सकते हैं। यह मेरा निज अनुभव है। जो सतसंगी समस्त आयु मन से गुरु मूर्ति तक ही सीमित हैं अथवा राम भक्त, कृष्ण भक्त, राम और कृष्ण की मूर्ति तक ही सीमित हैं वह (मैं निर्भय हो कर कह रहा हूं) कदापि उस पद तक नहीं जा सकते हैं। स्वामी जी ने स्पष्ट वर्णन किया है :-

भक्त, उपासक, योगी ज्ञानी, इन सब चक्कर खाया।

कोई अधिकारी किसी पूर्ण पुरुष की संगत से जो स्वय निर्बन्ध है, गुरु और शिष्य के बन्धन से मुक्त है, केवल उसकी संगत और आदेश से इस अवस्था तक पहुंच सकता है। वह भी केवल वह जिसको मान-प्रतिष्ठा, धन, धाम से उपराम हो चुका हो।

वह चौगाना क्या है ? जो मेंने देखा वह कहता हूं वह प्रकाश है और प्रकाश रूपी समुद्र है ।

अमृत कुण्ड अमी को खाई । महल सुनहरी रचे बनाई ।।

सम्भव है अमृत कुछ और हो । मैं अमृत को महा आनन्द और मस्ती की अवस्था समझता हूं । क्योंकि मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ है । यदि कोई और अमृत है तो ज्ञात नहीं । जब मेरी सुरत कभी इस दशा में होती है तो समस्त शरीर शान्त हो जाता है :—

चौक चांदनी दीप अनूपा । हंसन शोभा अचरज रूपा ।।

बहां प्रकाश ही प्रकाश है । प्रकाश के द्वीप अर्थात् लोक हैं । वर्णन शैली कवियों जैसी और रोचक है । वहां हंस होते हैं । मैंने समस्त आयु इन हंसों को देखने में व्यतीत की है । कभी-कभी बसरा बगदाद में मैं भो वहां सुन्दर प्रकाशवान रूप देखा करता था । किन्तु जीवन के अनुभव ने कुछ और ही सिद्ध किया है । वह क्या ?

अनेक सतसंगी मुझे (मेरे प्रकाशवान रूप) को अपने अंतर प्रकाश में देखते हैं । उनके पत्र आते हैं किन्तु चूंकि मैं नहीं होता, न मुझे यह ज्ञात होता है कि वह किस समय साधन में बैठे । इसलिए जिनको

यह रूप सुनहरी दृष्टिगोचर होते हैं। वह विशेष प्रकार के भाव और विचार उनकी सुरत पर होते हैं। वह रूप धारण करके सम्मुख आते हैं। इसलिये हंस क्या हैं ? प्रकाश की किरण, धारें गोलाकार, इस प्रकाश, जो कि बहुत ही स्वच्छ, निर्मल, सुनहरी अथवा स्वेत रंग का होता है उसके अणु हैं। यह मेरा अनुभव है। मैं उनको हंस समझता हूं।

चूंकि वहां प्रकाश ही प्रकाश है और बेअंत है, इसलिये वाणी कहती है :—

षोड़स भान चन्द्र उजियारा। सुरत चढ़ी देखा निज द्वारा॥

तात्पर्य यह है कि प्रकाश ही प्रकाश है।

द्वारपाल जहां बैठे हंस। कहीं कहीं अस कहीं कहीं बंस॥

इस स्थान पर चूंकि प्रकाश ही प्रकाश है और इस प्रकाश में प्रकाश के गोलाकार अणु हैं, कई तो सदैव ही वहां निवास करते हैं और कई वे हैं जो इस लोक से ऊपर जाकर वहां उस लोक में निवास रखते हैं।

सहज सुरत तहां वचन सुनाये। कहो भेद तुम यहं कस आये॥

मानवीय सुरत चूंकि उस मालिक की खोज में वहां तक गई थी और उस स्थान अथवा उस प्रकाश

को देखकर उसके अपने ही अंतर यह विचार हुआ कि वह वहां कैसे आई। यह नहीं कि वहां कोई दूसरा हस बात करता है। इस दृश्य को देखकर उसका प्रभाव अपने ही अंतर इस भाव को उत्पन्न करता है और वह सुरत उस सतगुरु का जिसने यह विचार दिया था उसकी कृतज्ञ होती है।

वहां जुबाने हाल नहीं, ज़ुबाने क़ाल है।
वही फुरता है, सुरत में जिसका मिला ख्याल है ॥

यों तुम देखो ! स्वप्न में तुम बातें करते हो। क्या कोई बाहर से आकर बोलता है ? नहीं। तुम्सारे मन के भीतर ही यह खेल होते हैं। इसी प्रकार सुरत के अन्तर जो संस्कार हैं वही वहां जाकर प्रकाशवान रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। और वही अध्यात्मिक भाषा में अनुभव है।

सुनाम रेलवे स्टेशन पर मैंने ६ मास घोर तप किया। मेरे अंतर प्रकाश रूप में स्वामी जी महाराज, हजूर महाराज और दाता दयाल जी प्रगट हुआ करते थे और वार्तालाप हुआ करता था। अब चूंकि सतसंगी जन मुझे लिखते हैं जैसे कि एक सतसंगी हजारीसिंह ने मुझे लिखा कि वह अपने अन्तर

महान प्रकाश में एक प्रकाशवान पदम के फूल पर मुझे प्रकाशवान रूप में बैठा हुआ देखता है और वहां अनेक प्रकाश रूप वाले मानव मेरा सतसंग सुनते हैं। चूंकि मैं नहीं होता और मैं इस से नितान्त अनभिज्ञ होता हूं इसलिये मुझे विश्वास हो गया है कि प्रत्येक व्यक्ति की सुरत प्रकाश-वान है और वह अपने अंतर इन संस्कारों के प्रकाशवान रूप बनाकर आनन्द और मस्ती लेता है।

इस लोक में आनन्द है और अत्यन्त आनन्द है। वहां बीन की अर्थात वहां की गति, प्रकाश के क्षोभ से जो ध्वनि निकलती है वह बीन के समान है।

वर्तमान पंथाई संभव है मेरे इस लेख से नाक भौंह सिकोड़ें। सुनो ! हुज़ूर सांवलेशाह ने एक सतसंग में जो एक लेख पत्रिका सारी दुनियां में प्रकाशित हुआ था इस सत लोक की वाणी के आधार पर व्याख्या करते हुए वर्णन किया था "कि भाई, वहां आनन्द ही आनन्द है"। मैंने वह पत्रिका सम्भाल कर रखी थी।

किन्तु खेद है कि मुझे इस समय नहीं मिल रही है वरन् दिखाता।

सुरत नवीन कहो तब वाणी, संत मिले उनकी कही निशानी।

मैं अभ्यासियों को अपना निज अनुभव बताये जा रहा हूं। यदि जीवन में कुछ और अनुभव हुआ तो वह भी बता जाऊंगा। मुझे कोई दावा नहीं।

इतना कह तब भीतर धंसी। सत्त नाम दर्शन कर हंसी।

जिस प्रकार स्थूल शरीर की तीन अवस्थायें हैं। जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्ति चौथा पद तुरिया, इसी प्रकार मन की तीन अवस्थाये हैं। मन की जाग्रत अवस्था त्रिकुटि, मन की स्वप्न अवस्था सुन्न और मन की सुषुप्ति अवस्था महा सुन्न। चौथा पद भंवरगुफा

इसी प्रकार आत्मा (प्रकाश और शब्द की) तीन हैं। सत, अलख, अगम।

पुहप मध्य से उठी आवाज़ा, को तुम हो: आये केहि काजा।
सतगुरु मिले भेद सब दीन्हा। तिनकी कृपा दरस हम लीन्हा
दर्शन कर अतिकर मगनानी। सत्त पुरुष बोले तब बानी॥
अलख लोक का भेद सुनाया। बल अपना दे सुरत पठाया॥
अलख पुरुष का रूप अनूपा। अगम पुरुष निरखा कुल भूपा॥
देखा अचरज कहा न जाई। क्या क्या शोभा बरनूं भाई॥

तीन पुरुष और तीनों लोक । देखे सुरत पाया जोग ।।
प्रेम विलास जहां अति भारी । राधास्वामी कहत पुकारी ।।

जहां तक मेरा साधन है मैं यही अनुभव करता हूं कि मेरे अपने अस्तित्व का जो केवल चेतन रूप है उसकी यहां तीन अवस्थायें हैं । चेतनपने की जाग्रत अवस्था सत्तलोक, चेतनपने का स्वप्न अलखलोक, चेतनपने की सुषुप्ति अवस्था अगमलोक । यह भी मेरा चेतनपना अपने आपे को भूलकर लामकानी सर्व-व्यापी हो जाता है । दूसरे शब्दों में सुरत निरत हो कर समाप्त हो जाती है । इस समय तक यह अनुभव है आगे क्या हो पता नहीं । मैं अब भी साधन करता रहता हू । इस अनुभव के आधार पर इस समय तक यही समझा है किः—

जिन्दगी इक बुलबुला चेतन, मेरी साबित हुई ।
यह जिस्म. मन और रूह मेरी. ऊंचे तबकों से बनी ।।
सुरत है लामकानी हस्ती की. इक छोटी सी किरन ।
मौज से यह वन गई और. खेल उसने है करी ।।
लब खुले और बन्द हुए. यह खेल है जिन्दगानी का ।
माया काल के भ्रम में आकर के. बहुत फिरी ।।
गुरू मिले जिन शरण दी. और नाम था दिया ।
इस नाम जपने से मेरी. मिट गई सब कलकली ।।

मौज के आधीन रह कर है, अभी हस्ती मेरी कायम।
जो खेल है उस मौज का, वह आप ही है कर रही।
कौन बुरा है, कौन है अच्छा, कौन पापी कौन पुनी।
आप ही है हस्ती वह जो, आप सब में रम रही॥
अलविदा ऐ दोस्तो, यह खुआब की थी इक जिन्दगी।
जो मेरी है वह तुम्हारी, सब की जिन्दगी॥
ज़ात है बस एक जो है तमव्वज में उसका जहूर।
भरम के बस में थी मेरी, यह नफसानी जिन्दगी।

समस्त संसार का कल्याण हो।

परम दयाल जी की मौज

सप्तम् चरण

अपने ही आप से प्रश्न करता हूं :-

प्रश्न :-क्या मिला तुमको फकीरा, इस परमार्थ के रुबत से।

उ० :- राज़ मिला इस ज़िन्दगी में, रहने का जब्त से ॥

परमार्थ एक प्रकार का सुखमय और शान्तमय जीवन है। शरीर के स्थाई रूप से त्यागने के पश्चात् क्या होगा? अनुमान और थ्योरी कुछ और बात है। वह तो समय आयेगा देखा जायेगा। जिस बात को देखा नहीं क्या कहूं?

प्र० :-ईश्वर, परमेश्वर या मालिक जिसकी तू खोज करता था अथवा संसार खोज करता है क्या निकला?

उ० :-एक तत्व है जो प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है। उसके विभिन्न रूप और आकृतियां है।

कहीं अनाम, कहीं सत्त है वह, कहीं गत और कहीं अवगत है वह
ऊंचे से लेकर नीचे तक, हर जगह में बेशक है वह ॥

प्र० :-तू कौन है ?

उ० :-मैं एक चेतन का बुलबुला हूं, जो उस परमतत्व की क्षोभ के क्रम में उत्पन्न किया गया हूं और जैसे-जैसे उस परम तत्व की मौज अथवा क्षोभ हुई वैसा-वैसा इस चेतन के बुलबुले ने प्रतीत किया।

प्र०:- गुरुमत क्या निकला ?

उ०:-मेरे अस्तित्व, चेतन के बुलबुले को, सुख शान्ती मिली। चेतन के बुलबुले की दौड़ भाग का नाम व्यवहार, और इसके शान्त होकर रहने का नाम परमार्थ है।

प्र०:-यह पांच गि़लाफ, कोश, श्रेणीयां, सोपानें और दर्जात क्या हैं ?

उ०:-उस परम तत्व के प्रकाट्य की अवस्थायें है। जब मानव इनका अनुभव कर लेता है, तो मेरी समझ में वह शान्त निभ्रान्त हो जाता है। और यही अवस्था जीवन्मुक्त अथवा विदेह मुक्त की है। मैं ऐसा समझता हूं, क्योंकि मुझे यही अवस्था प्राप्त हुई है।

दाता दयाल जी का शब्द जो उन्होंने मेरे नाम

लिखकर भेजा था याद आया :-

शान्त भाव, व्यवहार, परमारथ, नहीं मीठा नहीं खारा।
राधास्वामी दया रूप लख अपना, तू व्यापक संसारा ॥

भरम और अज्ञानवश मैंने दोड़ भाग की जो कि अनिवार्य थी।

प्र०:—मरने के पश्चात क्या होगा, अनुमान है ?

उ०:-लामकानियत, सर्वव्यापकता, संसार के होने की अनभिज्ञता।

जहां पुरूष तहां कछु नाहीं, कहें कबीर हम जाना।
जो कोई हमरी सैंना समझे, पावे पद निर्बांना ॥

आदि में मौन (चुप) और अंत में मौन (चुप) बस।

प्र०:-यह रचना क्यों हुई ?

उ०:-इसलिए कि प्राणी ज्ञात करे कि यह क्यों हुई और क्या कहूं ?

रचना होती रहती है, इसका होना है स्वाभाविक।
यह जो कुछ होता रहता है, यह है मौज मालिक ॥

सत्त कबीर की वाणी है :-

दौड़त-दौड़त दौड़िया, जहां लग मन की दौड़।
दौड़ थका मन थिर भया, वस्तु ठौर की ठौर ॥

प्र०:-इस अवस्था को प्राप्त करने की इच्छा क्यों हुई ?

उ०:-जो उपजे सो विनसे। जीवन बना इसलिये

समाप्त होना ही चाहिये। इस अवस्था की प्राप्ति की इच्छा जाने अथवा अनजाने प्रत्येक प्राणी में है। यह प्राकृतिक कुरीद है। मार्ग अनेक हों किन्तु जब तक जीवन समाप्त न होगा यह कुरीद प्रचिलित रहेगी।

प्र०:-प्राणी कहते हैं मानवीय आत्मा अजर अमर है।

फकीर:-प्राणी कहते होंगे, मैं नहीं कहता। मानव की ज़ात अवश्य अजर अमर अविनाशी है। किन्तु मानव के अन्तर जो बोधभान शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उत्पन्न होते हैं यह नाशवान हैं। क्यों कि मैंने ऐसा ही अनुभव किया है। निःसंदेह मानव की ज़ात अजर अमर अविनाशी और स्थाई है जब उसका अनुभव हो जाता है तो मानव, मानव नहीं रहता, वह कुछ और ही हो जाता है।

प्र०:-वह क्या हो जाता है?

उ०:-पांच कोशों को जिनका उल्लेख मैंने मौज के शीर्षक किया है उनसे पृथक होकर अथवा उन्हें उतार कर देखो तब ज्ञात होगा।

कहन सुनन का बात नहीं, देखा देखी बात।
दूल्हा दुल्हिन मिल गये, फीकी पड़ी बरात॥

अन्तिम वात :-हे मानव ! तू स्वयं
पार और अनामी है, किन्तु इस समय मानव
तू अपने आप को भूला हुआ है । अस्तित्व की
क्रम में यहां खेल खेलने आया फंस गया, ग़लत
मेर-तेरपने के बंधन ने तुझको दुःखी सुखी कर दिया ।
हार जीत की ठान ली । मैं फंसा हुआ था । आहा !
मुझे निकालने वाले दाता दयाल महर्षि जी की पवित्र,
पुनीत विभूति थी । उन्होंने दया करके मुझे अपन
सहारा दिया । जीवन को अनुभव करा दिया
मैंने साहस करके इस अनुभव को व्यक्त कर दि
कोई पर्दा नहीं रक्खा । जिसका जी चाहे मेरे अ
से लाभ-उठाये जिसका जी चाहे न उठाये ।

अब हम जायेंगे वतन अपने को, जिसको देखकर आये
हमरे देश में पाप पुन्य नहीं. नहीं किसी की है सेवा।
अपने आप में आप व्यापे. आप आप में रहाये हैं ॥
सर्वव्यापक. लामकानी. वह है देश हमारा ।
गुरू की दया साध की संगत. से अपना घर पाये हैं
चलते-चलते देते आशीर्वाद, भारत वासी सुखी रहें
इस भारत के जलवायु से. हम पले पलाये है ॥
मित्रजनो, सबको परनामा, हाथ जोड़ कर करते हैं
तुमरे मिलाप से ऐ मेरे सज्जनो. सुख बहुतेरे पाये

सब को राधास्वामी